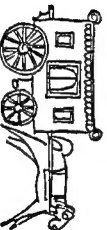
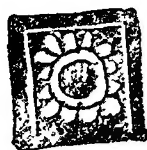
উত্তরাধিক



জরাসন্ধ




UTTRADHIKAR (NOVEL) BY JARASANDH

आवरण : इम्पैक्ट, इलाहाबाद

अनुवादक : छेदीलाल गुप्त

मूल्य : अठारह रुपये प्रथम संस्करण : १९७६

गिरीश टण्डन द्वारा साहित्य भवन (प्रा०) लिमिटेड, ९३ के० पी० कक्कड़ रोड, इलाहाबाद के लिये प्रकाशित तथा अलंकार मुद्रणालय, जवाहर स्क्वायर, इलाहाबाद द्वारा मुद्रित ।

यह उपन्यास

'उत्तराधिकार' उपन्यास विद्या मे एक नया सफल प्रयोग है। जरासध जी स्वय भी इस कथा के गढने मे अपनी पूर्व परिचित राह छोड कर नई राह पर चलते नजर आते हैं। इस उपन्यास मे उन्होने एक नई मान्यता स्थापित की है—इतिहास अपने को दुहराता ही नहीं है, कभी-कभी इतिहास प्रतिशोध भी लेता है।

शरणार्थियो की समस्या को लेकर और जमीदारी प्रथा के टूटने की प्रक्रिया से जोड कर आप ने एक नई बात पैदा की है।

यह उपन्यास सर्वथा नई भूमि पर, नई शैली मे, नई समस्या लेकर, नई सवेदना के साथ लिखा गया है जो अवश्य ही पाठको को प्रिय लगेगा, इसी विश्वास के साथ हम यह कृति प्रकाशित कर रहे है।

—प्रकाशक

•

उत्तराधिकार

•





बायें हाथ से रेलिंग पकड़कर आहिस्ते-आहिस्ते बहूरानी ऊपर चढ़ रही थी।

अभी थोड़ी देर पहले सीढ़ी की पटरियाँ धोई गई थी। पानी अच्छी तरह पोंछा नहीं गया था। खूब सफ़ाई के बाद भी यहाँ-वहाँ कुछ-कुछ मैल जमी रह गयी थी। उस पर निगाह पड़ी कि भौंहें सिकुड़ गयीं। अभिजीत उनके पीछे चल रहा था। बहूरानी उसकी ओर मुखातिब होकर बोली, "लाला, जरा सभल कर चढ़ना। कहीं पैर न फिसल जायें ··· सब के सब कैसे हो गये हैं। कामचोर!"

सीढ़ी पर पैर पड़ते ही अभिजीत का मन अनमना सा हो गया। बहूरानी के कहने पर उसकी अनमनस्कता टूटी। यों ही मुस्कुरा कर वह बोला, "हूँ-ऊ, अच्छा।"

सीढ़ी पर मोड़ लेते ही सामने से चाभियों का गुच्छा लिए दौड़ता हुआ हलधर आता दिखाई पड़ा। वह उन्हें देखकर दीवाल से सट कर खड़ा हो गया।

बहूरानी बोली, "दरवाजे और खिड़कियाँ, सब की सब खोल दी गयी हैं न?"

"कहाँ, ताला ही नहीं खुलता।"

"क्यों? चाभी नहीं मिली क्या?"

"मिली, मगर टस से मस नहीं होती। मोरचा लग गया होगा।"

"यह तो कोई खराबी नहीं है।" बहूरानी उदास होकर बोली। सीढ़ी के घुमाव पर की चौड़ी पटरी पर खड़ी होकर खुली खिड़की से कई मिनट बाहर ताकती रही। फिर आवाज में सहजता लाती हुई बोली, "वैसे-क्या होगा!"

"बिना ताला तोड़ कोई चारा नहीं। किसी मिस्त्री को पकड़ कर लाना होगा।"

"उँहूँ, वह क्या यहीं मिल जायेगा! उतनी दूर बाजार जाना होगा। तब तक तो ···।"

"बाजार क्यों! यहीं बगल में ही है।"

'यहीं!"

"हाँ, रिफ्युजी-बस्ती में, वहाँ है क्या नहीं!"

"नहीं, नहीं !" बहूरानी के चेहरे पर शंका घिर आयी। वह बोलीं, "मुनीम जी को पता चल जायेगा तो कुरुक्षेत्र मच जायेगा।"

"उन्हें पता चलेगा तब न ! चुपचाप खिड़की से बुला लायेंगे। दो हथौड़े में तो ताला टूट जायेगा।" कहते हुए हलधर फुर्ती से नीचे उतर गया। उसकी आँखों और होंठों के कोने में एक ऐसी हँसी चिपकी थी, जैसे बड़ों से छिपाकर कुछ करने जैसा काम किये जाने पर छोटे हँस दिया करते हैं।

अभिजीत भाँप गया। कुछ तुनुक कर बोला, "लगता है उनका यहाँ आना मना है !"

"बिल्कुल ! उनकी छाया भी पाप है। मगर उनका भी क्या दोष ! पर हैं सब के सब बेतुके। न कुछ पूछ, न ताछ, अचानक टिड्डियों की तरह झुंड के झुंड आ बसे। अरे, बगीचे के मालिक-मुख्तार से पूछ तो लिया होता ! माना उस समय मुसीबत में फँसे थे, बाद को पूछ लेने में ही क्या हर्ज था ? रातो-रात खूँटी-खम्भा गाड़कर मौज से जम गये। मानो यह उनके सात पुरखों की जमीन हो।...छोड़ो, यह महाभारत तो धीरे-धीरे सुनोगे ही। मुनीम जी ही सब कहेंगे।"

और वे वहीं से लौटने का इरादा कर के बोली, "तो अभी अब ऊपर जा कर क्या होगा ! कमरा धुले, झाड़ू-बुहारू हो ले, तो आ जायेंगे।"

सीढ़ी के छोर पर मेंहगनी की लकड़ी का बड़ा-सा फाटक था। उसके किवाड़ के काले रोगन वाले पल्ले में कभी चेहरा देखा जा सकता था। अब तो वह चमक उड़ गयी है। फाटक के पार लम्बा-चौड़ा छज्जा है। छज्जे के एक तरफ कतार से कमरे, सब के सब बन्द। हर के दरवाजे पर अढ़ाई-अढ़ाई सेर के मोरचे लगे ताले झूल रहे हैं। दूसरी ओर चौड़ी छत, जिसके तीन तरफ की रेलिंग बारीक नक्काशीदार है पर वह जगह-जगह से टूट चुकी है और बदरंग हो गयी है। छज्जे पर भी सफाई हुई थी लेकिन पूरी छत पर धूल, खर-खरके, चिड़ियाँ-चुनमुन की पाँखें बिखरी थीं, जिसके नीचे काई जमी थी।

अब चारो तरफ देखने के बाद अभिजीत ने कहा, "लगता है बहुत दिनों से यहाँ कोई आया ही नहीं।"

बहूरानी ने तुरंत कोई उत्तर नहीं दिया। छत की ओर दृष्टि गड़ाए चुप खड़ी रहीं। और जब कहा तो कुछ ऐसी कुम्हलाई आवाज में, कि लगा दूर जैसे बहुत दूर से आवाज आ रही हो। कहनी नहीं, स्वगत-उक्ति हो, "उधर तुम गये, इधर महल का द्वार बन्द हुआ, सो तब से घरवाले ने एक दिन को भी इधर मुँह नहीं किया। वे कभी कभार आ जाते थे, खुद खड़े होकर नौकरों से झाड़-बुहार कराते थे। यह भी कई वर्ष तक ही। इसके बाद वे भी चल बसे। बस, तभी से जो सब बन्द हुआ तो बन्द ही पड़ा है। संझौती जलाने भी कोई नहीं आता।"

कुछ पल चुप्पी और फिर फैली हुई दूरियों की ओर हाथ उठा कर बोली, "इस सडक से गाडी जब गुजर रही थी, उस समय अपने कमरे की खिडकी पर मैं खड़ी थी। खुले दरवाजे से सब दीख रहा था, तुम इस बगल सिर लटकाये बैठे थे और उनका बांया हाथ तुम्हारे कन्धे पर पडा था। ... यह क्या कल की बात है! अरे अट्ठारह-उन्नीस वर्ष बीते। क्यों इतना ही न!"

बहूरानी अपने देवर का मुंह निहारने लगी। सुदूर अतीत की यादों की गहरी छाया से मलिन उनकी आँखें बोझिल-सी लगीं।

अभिजीत कुछ नही बोला। धीरे-धीरे छत पर बढ गया। बहूरानी व्याकुल हो उठी, "नही, उधर न जाओ, बहुत फिसलन है।"

अभिजीत यह सुन पाया हो, ऐसा लगा नही। खोया सा और भी आगे बढ़ रेलिंग के निकट जा पहुँचा। बहूरानी ने फुर्ती से उसका पीछा किया। उसे सतर्क करते हुए कहा, "लाला उधर न जाओ, पुरानी लकडी है, किस जमाने की ....!"

अभिजीत एक कदम पीछे हट आया। बहूरानी कुछ क्षण सामने ताकती रही। बोली, "देख तो रहे हो न? बाग तो बाग, पूरा मैदान दखल कर बैठे हैं। नाम रखा गया है 'जबर-दखल कॉलोनी' यानी जो जबरदस्ती दखल किया गया हो। यह तो इससे ही सिद्ध है। मुनीम जी का ख्याल था कि ये लोग कुछ स्थिर हो लें तो कोई रास्ता निकले पर उसका तो कोई लक्षण ही नजर नही आता।"

अभिजीत चुपचाप बस्ती की ओर देखता रहा।

बेडे के किनारे-किनारे फैली थी फूलों की बगिया। दस बीघे तक। अधिकारियो के जमाने मे सब हरा-भरा था। गिरते दिनों से उनका ध्यान शायद इस ओर नही रहा और जब वे रहे ही नही तो फूलों की जगह जगली पौधो ने ले लिया या यो कहा जाय कि बाग को ढकेल कर जगल ने अपना अधिकार जमा लिया। चारो तरफ का घेरा जो यहाँ-वहाँ से भहरा गया है, कहो 'जबर-दखल' करने वालो के लिए यह भी एक सुविधा ही है। सिर्फ बाग ही नही, चार सौ बीघे पर उन्होंने अपना कब्जा कर लिया है।

भादों की गगा जब किनारे तक भर आती तो फैली-पसरी धूसर धरती के विस्तार पर गेरुआ छटा अभिजीत की आँखो मे तैरती रहती थी। कभी वह इसी छत पर खडे होकर मुग्ध-मन यह सब देखा करता था। उस दिन के उस अपरूप रूप को याद आते ही उसके मन मे टीस हुई। हरी-हरी कोमल घास से ढँकी धरती की देह मे जैसे घिनौने घाव के चकत्ते बन गये हैं। इधर-उधर, यहाँ-वहाँ मिट्टी के तेल के कनस्तर से बने, खपरैल से छाये घर, ताड के पत्तों का बेडा, फटे टाट का घेरा, कूडो का ढेर, मिट्टियों की ढाल, कीचड! इसी मे ढेर सारे नगे-अधनगे लोग बिलबिला रहे है! यह क्या इसान है—भगवान की श्रेष्ठ रचना!

अभिजीत की आँखें बस्ती की ओर से हट गयीं। इतना दीन-हीन, दुर्दशाग्रस्त, भद्दा रूप उससे देखा न गया। इतने दिनों वह जहाँ था, वह भी यही देश था—भारत-वर्ष। गरीबी वहाँ भी थी, पर वहाँ से इसकी कोई तुलना ही नहीं हो सकती।

''पीछे से ठोंक-ठाक की आवाज आयी। बहूरानी ने कहा, ''लगता है मिस्त्री आ गया। दिन भी चढ़ आया है। इधर का काम होने दो, हम लोग नीचे चलें, कम से कम तुम कुछ मुंह के डाल तो लो। लोग आने लगेंगे तो मौका नहीं मिलेगा।''

पहला कमरा बहुत बड़ा है, एक विराट हाल। उसके सामने उन लोगों के पहुँचते ही मिस्त्री ने अपने हाथ की हथौड़ी जमीन पर रख दी। फिर दोनों हाथ जोड़ कर झुक गया और नमस्कार किया।

बहूरानी ने पूछा, ''तुम यहीं, इसी बस्ती में रहते हो ?''

''हाँ रानी माँ, रह क्या रहे हैं किसी तरह साँस ले रहे हैं।''

हलधर ने पूछा, ''तुम्हारा घर किस सड़क पर है ?''

''अरे यही क्या तो'''लड़कों ने सड़क का कुछ नाम रखा तो है, पर ठीक से मालूम नहीं।''

''यहाँ की सड़कों का नाम भी है ?'' बहूरानी ने अचम्भे में डूबकर पूछा।

हलधर ने बताया, ''बहूजी, यह जो कटी-फटी सड़कें दीख रही हैं न, उनके हर नुक्कड़ पर तख्ती लटकी है। उन तख्ती पर कोलतार पोत कर खड़िया से नाम लिखा गया है। किसी का नाम देशप्राण शासमल रोड है और किसी का नेता जी सुभाष एवन्यू।''

''अच्छा !'' बहूरानी को हँसी आ गयी। मिस्त्री झेंप गया। अघा कर बोला, ''यह सब काम लड़कों का है।''

हलधर की खबरों की झोली में कुछ और भी मजेदार खबरें थीं, जिसे वह मौका पाकर रखे बिना रह न सका, ''तो उधर जो नयी सड़क बन रही है, उसका नाम होगा शंभूचरण राजपथ। यह वे ही आपस में बतिया रहे थे।''

इस नाम के कोई नेता या प्रसिद्ध व्यक्ति हुए हैं, यह अभिजीत नहीं जानता था। इसलिए उसने पूछा, ''वह कौन है ?''

''वही'', बहूरानी ने अर्थपूर्ण दृष्टि से देवर की ओर देख कर कहा, ''उसी के इशारे पर तो यहाँ के लोग उठते-बैठते हैं।''''छोड़ो, ताला टूटते ही फौरन कमरा साफ करवा डालो। समय नहीं है।''

यह आज्ञा हलधर को दे जैसे ही वे चलने को मुड़ीं कि मिस्त्री ने टोका, ''ई मालिक ही हैं न, जिनके आने की चर्चा थी !''

''हाँ जी, अपने छोटे मालिक।''

''परनाम, परनाम मालिक !''

फिर अमिजीत के सामने वह नत हुआ। बोला; "हम तो देखते ही समझ गये ···रानी माँ, आज यहाँ गाना-बजाना होगा!"

"हाँ, कलकत्ते से हमारे उस्ताद आ रहे हैं। उन्हीं की बैठकी होगी।"

"तो हम लोग भी सुनेंगे।" मिस्त्री ने घिघियाकर कहा।

बहूरानी कुछ कहे कि हलधर बोल पड़ा, "अँह, हुआ सब चौपट ! तुम का समझोगे ई सब।"

मिस्त्री ने जरा दुबक कर विरोध किया, "काहे ? गाना का हम लोग सुनते नहीं हैं—मुदा मनोहर चक्रवर्ती का कवि-गान सुना है—हरेक बरस, दशहरे में लगातार तीन-तीन दिन। अपने जमींदार के नाट्य-मन्दिर में मोतीराम का जात्रा, रास के समय टप्पा, मुदा क्या नहीं सुना ? कितना बड़ा-बड़ा दल आता था ढाका से।"

"अरे यह तुम्हारा वह कवि-गान और टप्पा-धप्पा थोड़े ही है यह —"

हलधर का वाक्य अभी पूरा हुआ नहीं था कि अमिजीत का गंभीर स्वर गूँजा, "ठीक है, तुम लोगों में जो सुनना चाहे वह आ जायें।"

बहूरानी कई कदम आगे बढ़ गयी थी। अमिजीत की बात की भनक पाते ही ठमक कर खड़ी हो गयी और देवर का मुँह ताकने लगी।

२

पत्रा के अनुसार अट्ठारह-उन्नीस वर्ष, मगर अपनी दौड़ में समय के चक्कर खाने को नापने का कोई यंत्र होता तो यह सिद्ध हो जाता कि जो कुछ हुआ है वह बेहिसाब है। इन कई बरसों की छोटी सी सीमा में पूरी एक शताब्दी सिमट आयी है। इतिहास के इतने लम्बे अध्याय में एक ओर अपार विध्वंस और दूसरी ओर पुनर्निर्माण का अथाह आयोजन किया रहा है। एक ओर है पुरखों की परम्परा का विलोप, दूसरी ओर है बनते हुए नये जीवन का सूत्रपात। दोनों के बीच न जाने कितना चढ़ाव-उतार, बनाने-बिगाड़ने की प्रक्रिया होती रही है। जिसके परिणामस्वरूप अविरल आँसू बहा है। हाहाकार हुआ है। सभ्यता और मानवता की लांछनाएँ मिली हैं। जैसे एक सँकरी गँवई नदी की छाती चीरता हुआ कोई महासमुद्र लहरें उछालता हुआ आगे बढ़ गया है।

यही सब कुछ स्वरूपकांदी के वंद्योपाध्याय घराने के इस ऐतिहासिक विशाल कमरे में खड़े, उसके वर्तमान वंशधर अमिजीत के मन को कुरेद रहा था। कुछ देर बाद

ही यहाँ संगीत की महफिल जमेगी। जिसकी लगभग सभी व्यवस्था पूरी हो चुकी है। पूरे कमरे में दरी बिछ चुकी है। उस पर एक तरफ कुछ जगह छोड़ कर जाजिम और तकिये सज गये हैं। वहाँ खास लोग बैठेंगें। और वहाँ कुछ ऊँची गद्दी लगायी गयी है, जिस पर बैठेंगें उस्ताद, उनके संगतिया। सभी में से गंध का एक विचित्र भमका निकल रहा है। हलधर ने सभी खिड़कियाँ खोल दी हैं। अगुरु का धूना देने में वह उलझा है।

छत से भूल रहे हैं चकचमाते हुए झाड़-फानूँस। मगर उनके एक सौ आठो कंदील पहले की भाँति आज रोशन नहीं हैं, उनके बदले पेट्रोमेक्स टाँगे गये हैं कई, जो गिनती में जगह के विस्तार के हिसाब से कम हैं। ऐसी धुँधली रोशनी में दीखने वाली बदरंग दीवालों पर भयंकरता ने अपना प्रभाव जमा लिया है। कहीं-कहीं जो बड़े-बड़े मूल्यवान तैलचित्र टँगे हैं वे अधिकतर इस घराने के पुरखों के हैं। उनके, जो इतिहास के गर्त्त में समा गये हैं।

अभिजीत घूम-घूम कर उन चित्रों को देख रहा है। उन पर जमी गर्द की सफाई ठीक से नहीं हुई है। चित्रों में पीछे की पंक्ति में जो लोग खड़े या बैठे हैं, उनमें से किसी की शक्ल पर गौरव का गरूर है, तो किसी के चेहरे पर दया से उपजी प्रसन्नता का भाव। ये दौलत और जिन्दगी के साथ आँख-मिचौनी का खेल खेलते रहे हैं। जहाँ देने को हाथ बढ़ाया, वहाँ सब उजड़ गया, जहाँ से लिया वहाँ कुछ छोड़ा ही नहीं। एक हाथ से पोषण तथा दूसरे से शोषण। बायें अवरोध, दायें अनुरोध। यहीं उनकी जिन्दगी का अर्थ रहा है। उनके लिए जिन्दगी का कोई मोल नहीं था, न अपनी, न दूसरों की। जरूरत के मुताबिक दोनों ही एक जैसे हेय। लेने में जिस तरह नहीं हिचके, देने में भी उसी तरह कुंठित नहीं हुए।

नारी उनके लिए सिर्फ भोग्या थी, शराब के कई प्रकारों में एक ऊँचे स्तर के मनोरंजन की वस्तु। उसके मूल्यांकन का उनके पास एक ही निकष था—तन की भूख मिटाना। इसलिए जिस नारी को दिन के धुंधलके में वरणयोग्य मान उन्होंने सम्मानित किया उसे रात की रंगीनी में वेश्या मान कर अपमानित भी किया। उन्होंने आधी रात में जिस के तलवे सहलाये रात के अन्तिम प्रहर में उसे लात मारा।

अभिजीत ने वहाँ से आँखें हटा कर अपने अन्दर झाँका—इसी अतीत का वह वर्तमान है। मगर खानदान का कोई चिह्न उसमें नहीं उभरा। वह उनके खून का मात्र परिचय है, विचार और आदर्श नहीं। जिन्दगी जीने का जो ढंग उनका था, उससे उसका कोई ताल-मेल नहीं। वह एकदम आज का है, कुल-कलंक। उसे तैंतीस की अपनी उम्र में इसके लिए, कितना क्या चुकाना पड़ा है, और कितना क्या चुकाना पड़ेगा।

हॉल में उधर दीवाल पर एक छाया उभरी। बहूरानी आ रही हैं। बंद्योपाध्याय घराने की बड़ी विधवा बहू जो चालीस की चौहद्दी पार कर रही हैं। रंग गोरा।

तन भारी होने के बावजूद भी बीती जवानी के चिह्न आज भी मौजूद हैं। अभिजीत ने स्मृति से बोझिल पलकें उभार कर मामी की ओर देखा।

बहूरानी गौर से चारों ओर देखती हुई चली आ रही थी। वे शान्तिपुरी थान की उजली साडी पहने थी जिसमें नीचे या आंचल में कहीं भी गोटे की इतनी-सी किनारी भी नहीं थी। अभिजीत को अपनी बुआ याद आयीं। वे तीज-त्यौहारों में या ऐसे अवसरों पर चौडी किनारी की भड़कीले आँचल वाली साडी पहना करती थीं। और महफिल में चिक की ओट में आ बैठती थीं। उस समय वे पचास की थीं। और बहूरानी का पहिनावा उन दिनों क्या था ? सलमा-सितारे वाली बेशकीमती साडी से झांकती देह तथा हीरे-मोती-टंके दुपट्टे में से झाँकता विहँसता मुखड़ा। अभिजीत यादों में डूब गया।

महामाया ने अभिजीत को वहाँ देखा तो अचरज में डूब गयीं। बोलीं, "लो, तुम यहाँ हो और मैं घर भर ढूंढ मरी। अभी-अभी हलधर को गंगा किनारे देखने को भेजा। बचपन में तुम वहीं जाकर बैठते थे। याद है ? गंगा भी आज वैसी नहीं रही, जैसा तुम देख गये थे। घट गयी है बहुत। वैशाख-जेठ में तो घुटने भर भी पानी नहीं रहता। कहीं-कहीं तो सूख भी जाती है। बरसात में जरूर पहले जैसी उफन-उफन उठती है। उस समय लगता है, चलो पुरानी गंगा लौटी तो सही।"

इन सारी बातों से अभिजीत के पल्ले कुछ भी नहीं पड़ा। पड़ा भी हो तो मन में उतरा नहीं। उस समय वह हॉल के एक ओर दृष्टि गड़ाये खड़ा था। दृष्टि वहीं स्थिर किये वह बोला, "वह रात तुम्हें याद है मामी ?"

"कौन सी रात लाला ! तुम्हारे लौट आने पर याद रखने लायक रात तो एक ही है, दूसरी नहीं।"

"यह भी तुम ठीक कहती हो। फिर भी मेरे लिए उसका जोड़ नहीं है। क्या नाम था उस बाई जी का ?"

महामाया यह समझ गयी थीं कि अभिजीत किस रात की चर्चा कर रहा है। कुछ रुक कर गहरी सांस लेकर उन्होंने कहा, "मालूम नहीं, कोई बाई-वाई रही होगी।"

वह बाई जी जहाँ सोयी थी, उस जगह का ध्यान अभिजीत को आज भी है। वह ठीक से सोयी नहीं थी। देह लुढ़काये पड़ी थी। ऊपर झूलते हुए झाड-फानूसों में से कई तो एकदम बुझ चुके थे, बाकी कइयों में कई गिनती की कंदीलें जल रही थीं, और मन्द रोशनी में भी उसके साड़ी-गहने झकमका रहे थे। और उसका मुंह ! उस दिन अभिजीत को पहली बार यह महसूस हुआ था कि साये में आदमी की शक्ल कितनी बद-शक्ल होती है। वह भद्दा मुँह इस क्षण भी आँखों के सामने उभर आया।

उधर से मुँह मोड़कर वह बहूरानी की ओर मुखातिब हुआ। एक झेंप-भरी मुस्कान उसके चेहरे पर छा गयी। एक ऐसी सलज्ज मुस्कान जैसी उम्र बढ़ने पर बच-

पन के किसी अटपटे व्यवहार की याद करके मुस्काई जाती है। वह बोला, "आज सोचता हूँ वह बचपना था।"

"बच्चे और कर भी क्या सकते हैं। बड़ों को उसी भाव से देखना न चाहिए। अपने बड़े मालिक भी अगर उस दिन ऐसा ही समझते तो—।"

"नहीं समझने का कारण था। उस समय यह समझा भी नहीं जा सकता था। पर बाद को उन्हें महसूस हुआ होगा। ऐसे घराने के एक पन्द्रह वर्ष के लड़के का इतने कड़े अनुशासन की सीमा तोड़ कर उस गहरी रात में ऐसा दुस्साहस कर बैठने में उसकी यंत्रणा क्या हो सकती है, कोई सोचता भी कैसे ! हो सकता है सोचा भी हो, पर उसने जो किया वह भी धिक्कार के सिवा और क्या हो सकता था, इसलिए ऐसे को कठोर दंड दिया ही जाना चाहिए।"

"मगर वह दण्ड, तुम्हें क्या पता, अकेले तुम्हें ही भोगना नहीं पड़ा लाला !"

"पता है, तुम सभी को भोगना पड़ा है, खास कर माँ को !"

"हम लोगों को छोड़ो। माँ के बारे में भी मैं नहीं सोचती। कौन जाने विधाता ने कष्ट भोगने और बोझ ढोने के लिये ही संसार में उन्हें भेजा था। इसके लिये उनका हृदय भी वैसा ही था। लेकिन लाला, जिन्होंने दण्ड दिया वे स्वयं उस भोग के सब से बड़े भागीदार हुए। यह खबर तुम तक शायद नहीं पहुँची है। मैं कह यही रही थी। उस रात के बाद इस महल में दीया नहीं जला।····छोड़ो, आज के दिन यह सब कहना-सुनना ठीक नहीं ! जाओ कपड़े बदल लो, तैयार हो जाओ।"

अभिजीत ने अपने को देखा और कहा, "क्यों, यह कपड़े तो ठीक ही हैं।"

"अरे वाह ! मिल की धोती और गंजी पहन कर महफिल में बैठोगे ? नहीं नहीं ! तुम्हें क्या पहनना है, मैंने सहेज दिया है। जाओ, अब मेरा यहाँ खड़ा रहना उचित नहीं है। लोग-बाग आने लगे हैं।"

"तुम चलो, मैं आया।"

महामाया घबराती-सी चली गयी। उधर देखते हुए अभिजीत फिर अतीत में डूब गया।

बहूरानी से माँ की कोई तुलना नहीं हो सकती, फिर भी आज, इस क्षण वे ही सहसा यादों मे उभर आयी। उस दिन की वह रात–जब पीछे से उसने देखी थी एक सपाट, अचल देह, आज अट्ठारह वर्ष के व्यवधान में भी जिसकी टीस ज्यों की त्यों बनी हुई है।

उस समय रात कितनी बीती होगी, शायद दो-अढ़ाई बजा होगा। अभिजीत कोई सपना देखते हुए अचानक चौंक कर सोये से जग गया था। बगल वाली पलँग

पर माँ सोती थी। पलक खुली तो उसने देखा कि पलँग खाली है—माँ कहाँ गयी ? मन कैसा तो कर उठा। वह अकचका कर उठ बैठा। दूसरे ही क्षण उसे अपने आप से ही लज्जा हुई। भला वह कहाँ जा सकती हैं ! बरामदे में उधर जो नहानघर है, उधर ही गयी होंगी, आ जायेंगी अभी।

अभि लेट गया पर दृष्टि दरवाजे पर टँगी रही। दस मिनट'' पन्द्रह मिनट'''। वह उद्विग्न हो उठा। अपने पलँग से उतर, भिड़े किवाड़ खोल बरामदे में आ गया। रात अँधेरी थी। दूर बाहरी महल में जो चौमुँहा दिया जल रहा था, उसके अलावा कहीं कोई रोशनी नहीं थी। धुले-उजले आकाश पर तारे झिलमिला रहे थे, उसी धुँधली झिलमिलाहट में उसने देखा कि छज्जे के एक कोने में हाथ के सहारे रेलिंग पर झुकी माँ खड़ी हैं। सिर से आँचल सरक कर कन्धे पर अटक गया है। दूर से बस इतना ही दीखा। उनके खड़े होने की इस भंगिमा में जैसे बीते बहुत से दिनों में इकट्ठी होने वाली उदासी गहराई थी।

अभिजीत था तो पन्द्रह बरस का ही। माँ से उसका सम्पर्क काया की छाया जैसा ही था। माँ का हर चरण जाना-पहचाना था। माँ को इतना उदास, असहाय आज के पहले उसने कभी नहीं देखा था। सहसा उसके मन में हुआ-माँ अकेली है, बहुत अकेली !

कुछ क्षण वह वहीं खड़ा रहा, फिर धीरे-धीरे माँ के पास जा पहुँचा। उनसे सटते ही वे चौंक कर उसकी ओर मुड़ी। अभि ने तब देखा—उनकी आँखें डबडबाई हुई हैं। अचरज से पूछा; "क्या हुआ माँ ?"

सुलोचना ने झट आँचल से आँखें पोंछ लीं। अभि के कन्धे पर हाथ सहलाते हुए कहा, "इतनी रात को तू जग क्यों गया ? चल सो, सो जा।"

अभि कुछ बोला नहीं। सुलोचना उसकी बाँह पकड़ कर ले गयी और बिछावन पर सुला दिया। सिर सहलाती हुई बोली, "तेरी नींद टूटी कैसे ? कोई सपना देखा ? सो जा ! रात जगने से तबीयत खराब हो जायेगी बेटे ! पानी पियेगा····?"

"नहीं।"

अभि खामोश लेटा रहा। मुँदी आँखों में माँ की धुँध में डूबी-आँसूभरी आँखें तैरने लगीं। इस आँसू के उद्गम से वह परिचित नहीं था। अपने बचपन में जितना और जो वह सोच समझ सका था, उससे ही उसका मन टीस और गुस्से से भर उठा।

अभि यह जानता था कि उसके पिता आज तीन दिनों से इस महल में एक पल के लिये भी नहीं आये। वह देखता रहा है कि माँ उनके पसन्द की रसोई स्वयं उनके लिये बनाती रही हैं। रोज ही भोजन के कमरे में उनके लिये आसन बिछा कर बैठी रही हैं। पिताजी जब भोजन करते थे तो माँ वहीं बैठी पंखा झलती थीं, पर इधर पंखा जैसे का तैसा पड़ा रहा है। उस आसन पर कोई आसीन नहीं हुआ, वह पंखा झला नहीं गया। दो पहर ढले महरी आयी और सब उठा कर ले गयी। इसके

बाद भोजन करके पिताजी जिस पलँग पर आराम करते थे, माँ नियम से उसकी चादर बदल उसकी सिलवटों को ठीक करती रही हैं। गड़गड़े का पानी बदल कर रोज नियत स्थान पर उनका खास नौकर दिवाकर रखता रहा है। माँ उसके नैचे को बार-बार सहेजती-सँभालती रही हैं ताकि उनके हाथ बढ़ाते ही उन्हें सरलता से मिल सके। इन तीन दिनों तक मुँह पोंछने के लिये तौलिया भी तिपाई पर रखा गया है पर जिसके लिये इतना सब कुछ किया गया वही अनुपस्थित रहे।

वे क्यों नहीं आये इस विषय में न किसी ने उसे खोल कर बताया और न उसने जानने की कोशिश की। यह उसका अनुमान है कि इसमें उसके खानदान की हीनता छिपी है। इधर कई रातों से हॉल-घर में महफिल जमी है। लखनऊ से बाई जी आयी हैं। खास-महल में उन्हें ठहराया गया है। जहाँ छोटे बच्चों के जाने की सख्त मुमानियत है। वहाँ के क्रिया-कलाप के बारे में प्रत्यक्ष जानकारी नहीं होने पर भी नौकर-चाकरों की फुसफुस, इशारेबाजी, रात को देर तक पीने-पिलाने की सरगर्मी, नायब-गुमाश्तों की दौड़-धूप और हद पार कर आने वाले कहकहे से एक पन्द्रह वर्ष की उम्र के लड़के का यह अन्दाज लगाना कि इन सभी से वंश के कर्त्ताधर्त्ता की कई दिनों की अनुपस्थिति का कुछ न कुछ लगाव अवश्य है, यह सोचना अस्वाभाविक भी नहीं है।

ऐसे परिवेश में अभिजीत जन्मा और इतना बड़ा हो गया। किन्तु दूसरे सभी इसे ही इस खानदान का स्वाभाविक और अटूट अंग मान बैठे थे, पर अभि के लिये यह सम्भव नहीं था। छुटपन से ही बंद्योपाध्याय परिवार का छोटा वंशधर जैसे कुछ अलग तरह का ही रहा। वह वंश की परम्परा में ठीक ढल नहीं सका। ऐसी धारणा बहुतों की है, कइयों ने तो दबे स्वर में कहा भी है। पर इससे अधिक किसी ने सिर भी नहीं खपाया। किसी ने भी इस बात पर गौर नहीं किया कि जैसे-जैसे आँखें खुलती गयी हैं वैसे-वैसे इन सब के विरुद्ध एक दबा विक्षोभ और मन की ओट में पलने वाली घृणा की संकोच उसके कच्चे मन को लहू-लुहान करती रही है। जब वह कुछ और बड़ा हुआ, तब से वह अन्दर ही अन्दर यह महसूस करने लगा कि ऐसे ऐशो-इशरत में उसके पिता जो लिप्त हैं, वह केवल लज्जा की ही बात नहीं हैं बल्कि उसमें निहित है माँ के प्रति उपेक्षा···असम्मान !

और माँ ऐसी हैं कि इस बारे में कभी कुछ सोचती भी नहीं। इधर इन तीन दिनों से अभि माँ के हर बात-व्यवहार पर निगाह रखने लगा है और भीतर ही भीतर विस्मित भी होता रहा है। माँ सहज भाव से चलती-फिरती रही हैं, काम-काज करती रही हैं, नौकर-नौकरानियों को 'यह करो—वह करो' का आदेश देती रही हैं। किसी भी काम में जरा भी फर्क नहीं पड़ा, जरा भी शिथिलता नहीं आई। जैसे किसी प्रकार के क्षोभ, कचोट और लज्जा-बोध करने जैसा कुछ हुआ ही नहीं।

अचानक अरमय नींद टूटने पर जब धूमिल रोशनी में माँ के सोच भरे मुखड़े पर उसकी दृष्टि गयी तब उसे कोई विशेष विस्मय नहीं हुआ। आँखों पर से जैसे किसी ने एक पर्दा हटा दिया। उसे सहसा ऐसा लगा कि इतने बड़े परिवार को दिन भर के ढेरों काम-काज की धुरी पर जिसे वह चक्कर खाते देखता रहा है, वह उसकी माँ की यान्त्रिक देह है और सुनसान छज्जे पर रेलिंग के सहारे रात के सन्नाटे में जो खड़ी थी, जिसकी आँखें आँसुओं में डबडबाई थीं, वही उसकी माँ है। और माँ का वास्तविक रूप भी यही है—कलह, कलह से त्रस्त, लज्जा और व्यथा से व्याकुल !

कुछ देर पहले माँ उसकी बगल से हट गयी थीं। शायद उन्होंने सोचा हो, अभि सो गया है या एक ओर से इतनी रात तक काम की थकान में चूर होने की वजह से बैठे रहना उन्हें अच्छा नहीं लगा हो। इसलिये उसकी ओर पीठ फेर कर सो गयी थीं। ताखे में जलते दीये की मद्धिम रोशनी में उनकी सिकुड़ी-सिमटी देह नजर आ रही थी। दोनों पाँव घुटने से जुड़े थे। पहले से वे दुबली लग रही थीं। ऐसा लग रहा था जैसे कोई छोटी-सी लड़की सोयी हो।

अभिजीत का मन रो उठा। एक इतने बड़े परिवार की सम्पन्न मालकिन, इतनी धन-सम्पत्ति, इतना स्वामित्व-प्रभुत्व, सब कुछ होते हुए भी माँ कितनी गरीब हैं, कितनी दीन-हीन। माँ को अन्धेरे में आँसू बहाना पड़ता है, क्यों···आखिर क्यों ? और मन में विद्रोह की चिनगारियाँ चटखने लगी थीं। किसी एक व्यक्ति के विरुद्ध नहीं। परिवार के हर कुछ के विरुद्ध—विशेष कर खास-महल के हॉल-घर में जो कुछ हो रहा है—देहाभागी बहशीपन ··, उसके विरुद्ध प्रत्यक्ष न होते हुए भी कोई भी घृणा के भाव से बरी नहीं है।

अभि के मन में सुलगती आग धीरे-धीरे आँखों में लपटें लेने लगी थी। बिछावन से वह फौरन उठ खड़ा हुआ—इसका समाधान चाहिए ···करना होगा। क्या ? कैसे ? वह क्या कर सकता है ? यह सोच ही नहीं सका। जवान मन में दृढ़ता की कमी नहीं होती।

माँ के ऊपर एक नजर डाली—वे सोयी हैं। धीरे से दरवाजा खोलकर वह चुपचाप निकल पड़ा।

अन्दर महल के पार बीच का महल है और इसके भी बाद है खास-महल। कहीं भी हलचल नहीं, सब कुछ सोया-सा खामोश। जब कि अभी-अभी कुछ देर पहले इस विशाल महल को घेरे था गति-तरंग और शब्द-गुन्जार। एक ओर काम-अकाम में उलझे लोगों की बतकही, दौड़-धूप, तो दूसरी ओर, उधर किसी सुकण्ठी के सुरीले स्वर, तबले और सारंगी की ठुनक, घुंघरू की गूंज की समा। रह-रह कर गूंज उठता था गँवारू 'वाह-वाह'। इन सब के ऊपर जैसे किसी ने मुर्दा सन्नाटे की चादर डाल दी थी।

लम्बे दर-दालान की दूरियाँ तय कर हॉल-घर की सीढ़ी के सामने अभिजीत सहसा रुका। उसके दोनों पैर काँप रहे थे। उस जैसे नाबालिग के लिये यहाँ आने की मनाही थी। जितने दिन महफिल होती, उतने दिन वह यहाँ आ नहीं सकता था। दूसरे ही क्षण वह बाधाओं का बन्धन जबर्दस्ती तोड़ तेजी से ऊपर चढ़ गया। निषेध की सीमा तोड़ने की गरज से वह बढ़ गया आगे। इतनी सुनसान रात में।

दरवाजा खुला था। पूरे हॉल-घर में जाजिम बिछी थी, उन पर यहाँ-वहाँ सिलवटें पड़ीं थीं। बड़े-बड़े तकिये इधर-उधर पड़े थे। कितनी ही खाली बोतलें लुढ़की पड़ी थीं। अभिजीत धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा था।

हॉल-घर पार कर उधर के कमरों में से कोई एक कमरा उसका लक्ष्य था, लेकिन कौन-सा, यह वह खुद नहीं जानता था। आगे बढ़ा कि उसे रुकना पड़ा।

वहाँ किनारे पर मखमली लाल कार्पेट से ढँके मोटे गद्दे की थोड़ी ऊँची जगह के पास उसे घेर कर तबले, हरमोनियम, सारंगी जहाँ-तहाँ जैसे-तैसे पड़े थे। इसी के बीच टूटी-फूटी हुई, धड़ाम से गिर गयी-सी एक पड़ी थी नारी-देह बिखरी-सी। उसके सिर के ऊपर छत से झूलते झाड़-फानूस की टिमटिमाती रोशनी में उसके चेहरे का एक हिस्सा नजर आ रहा था। होंठ दोनों बहुत कुछ खुले-से थे।

अभिजीत जरा और पास गया—क्या यह वही है? नहीं! उसने सुन रखा था, उसके टिकने के लिये कहीं अलग व्यवस्था थी, इधर ही कहीं। तो यह यहाँ क्यों पड़ी है? अलावे इसके नौकरों की कानाफूसी से उसे यह पता चला था कि वह लाखों में एक है—बहुत खुबसूरत। खुबसूरती क्या इसे ही कहते हैं? साड़ी और गहने से यह सन्देह नहीं रहा कि यह वही नहीं है। जहाँ-तहाँ अधजली मोमबत्तियों की टिमटिमाती रोशनी की झिलमिलाहट उसकी देह पर पड़ रही थी। बेशकीमती साड़ी और बहुमूल्य गहने पहन कर इस निषिद्ध महल में भला उसके सिवा और कौन हो सकता है?

अभिजीत जानता था, ये लोग शराब पीती हैं। सम्भवत: ज्यादा चढ़ा गयी हो और नशे में यहाँ से अपने कमरे तक जा नहीं सकी, यहीं लुढ़क गयी।

यकायक वह हिली-डुली। नींद में ही बुदबुदाती हुई उसने पैरों को सीधा किया और चित पड़ी रही। अब अभिजीत ने उसके अंग-प्रत्यंग, सब कुछ देखा। उसके मन ने कहा—विकृत, ऐसा विकृत चेहरा उसने आज के पहले कभी नहीं देखा। सोयी भी कैसे है—बेढंगी। यह कोई भूतनी है। दादी की कहानी वाली भूतनी, जो रात के पहले पहर में रूपसी युवती का नकली रूप धारण करती है और जैसे-जैसे रात ढलती जाती है, वैसे-वैसे उसका असली रूप प्रकट होता जाता है।

उसे घूरते रहने पर अभिजीत का युवा मन करुणा से पिघल उठा। जितने

बेटे को पहचान नहीं पाये। उसकी ओर जब बढ़े तो सहसा रुक गये। आश्चर्य के साथ बोले, "अभि तुम ? इतनी रात को यहाँ ?"

अभिजीत को जैसे काठ मार गया हो।

सहसा गुस्से में उबल कर सुरजीत बोले, "बता, यहाँ आया क्यों तू ?"

अभि कुछ कहना चाह कर भी कुछ बोल न सका। होंठ थर-थर काँप कर रह गये। इसके बाद आँसुओं में भीगे कई शब्द उसके मुँह से निकले, "आप माँ को इतना दुःख क्यों देते हैं ? आप एक मिनट के लिये भी अन्दर उनके पास क्यों नहीं आये ?"

यह कहते हुए उसकी आँखों में आँसू भरभरा आये। दोनों हथेलियों में उसने अपना मुंह छिपा लिया। फिर वहाँ से लौट आया।

बाई जी का मुजरा पांच दिनों के लिये तय था। अभी दो दिन और बाकी थे। सवेरा हुआ तो मालिक की बैठक में खजांची की बुलाहट हुई। उनका खास नौकर दिवाकर उन्हें खबर देने आया। खजांची को पहले तो विश्वास ही नहीं हुआ—कल आधी-रात बीते तक महफिल जमी थी। कम से कम सवेरे आठ बजे तक खास-महल के कौवे भी भला कैसे जग सकते थे ! मालिक के जगने की बात तो और भी देर से उठती है। ऐसा ही वह वर्षों से देखते आ रहे हैं। आज तक कभी भी इसमें कोई गड़बड़ी नहीं हुई।

दिवाकर हुक्म तामील करके चला गया। कुछ देर बाद फिर बुलाहट हुई तो खजांची भागे आये। देखा, तकिये से उँठगे मालिक गड़गड़ा पी रहे हैं। जैसे इसी समय रोज वे यही करते हों। उनके चेहरे के भाव से या आँखों से भी कुछ प्रकट नहीं हुआ। सामने हाजिर होते ही उन्होंने शान्त मगर भारी आवाज में कहा; "बाई जी का हिसाब नक्की कर दीजिये।"

खजांची कुछ समझ नही पाया, इसी भाव से वह खड़ा रहा। सुरजीत गड़गड़े का नेचा हाथ में लेकर बोले; "सुना नहीं ?"

"जी, पांच दिन पूरा हो ले तो एक संग हिसाब हो जायेगा।" बड़ी मुश्किलों से सिर खुजलाते हुए खजांची ने कहा।

"वह आज ही चली जायेगी।"

"आज ?···तो हिसाब तीन दिनों का किया जाये ?"

"नहीं, कौल के अनुसार पूरा।"

खजांची 'जो हुक्म' कह कर चले गये। इस संबंध में जिसे जो और आदेश देना था सुरजीत ने दिया। सभी ने बिना कुछ कहे गर्दन हिला-हिला कर मंजूर कर लिया और जिसे जो करना था वह उसमें लग गया। सवाल-सवाल ही बना रहा मन में

था आँखों में। किसकी हिम्मत थी जो कुछ पूछे। किसकी किस गलती से यह सब हुआ यह भी सभी के मन में छिपा रहा।

यह खबर अभिजीत को नौकरों की कानाफूसी के जरिये मिली। उसे खुशी होनी चाहिए। यही तो वह चाहता था। इसीलिये न वह आधी रात को वहाँ गया, था जहाँ दिन को भी जाना सख्त की बुलावा भेजना था। खुशी के बदले किसी भयानक घटना की कल्पना में उसका दिल दहल उठा। सिर्फ वही नहीं, परिवार के सभी इस भय से त्रस्त हो उठे। पढ़ने बैठा तो मन नहीं लगा। किताबें उलट-पलट कर खिड़की पर जा खड़ा हुआ। उस महल से होती हुई जो सड़क स्टेशन की तरफ चली गयी है, उसका कुछ हिस्सा यहाँ से नजर आता है। सहसा उसने देखा—एक के बाद एक, तीन बैलगाड़ियाँ चली जा रही हैं। बक्सा-बक्सा, गठरी-मोटरी सँभाले जो लोग उन पर बैठे हैं उनमें से दो-एक को वह पहचानता है।

बाई जी चली जा रही थीं।

बैलगाड़ियाँ 'घर्र-घर्र' करती हुई मथर गति से बढ़ रही थीं। अभिजीत खिड़की की शलाखों को थामे चुप खड़ा रहा। इस छोटी उम्र में भी उसके मन ने कहा— यह उचित नहीं हुआ। इसमें कोई अशुभ छिपा है, जिसका अन्त यहीं नहीं है, हो सकता है, यह उसका प्रारम्भ हो। क्या-क्यों, यह वह नहीं जानता, सोच भी नहीं सकता।

कुछ मिनट बाद दरवाजे पर होने-से दस्तक हुई। दरवाजे पर माँ की अपनी नौकरानी पुनियामौसी खड़ी थी। उसका मुँह अषाढ़ के बादल सा पड़ गया था। अभिजीत उसकी गोद में ही इतना बड़ा हुआ है। उसकी आँखों से सदा-सर्वदा ममता और स्नेह टपकता रहा है। अभी उस रूप कर अभिजीत का मन सिहर उठा। पुनियामौसी ने बड़े दर्दीले लहजे में कहा, "छोटे भइया, तुम्हें माँ जी ने बुलाया है।"

"कहाँ हैं वे ?"

"अपने कमरे में।"

इतना कह कर वह चली गयी। अभिजीत को अचरज हुआ—इस वक्त तो माँ उसे कभी नहीं बुलाती। उनका अपने कमरे में भी होना आश्चर्य ही है। रोज ही दोपहर तक वह रसोई में रहा करती हैं।

सुलोचना अपने कमरे की ड्योढ़ी पर ही मिली। अभि की आँखें उनकी आँखों से मिलीं, पलकें भारी लगीं। आँखों में ललाई छायी थी। माँ उसकी आत्मा से जुड़ी थीं, इसलिये उसे यह समझते देर नहीं लगी कि माँ को इसी बीच ज[illegible]सी भयानक तूफान का सामना करना पड़ा है। माँ ने लड़के को देखते ही पू[illegible] कहा, "उतनी रात को कहाँ गये थे ? किसने कहा था तुम्हें वहाँ जाने को [illegible]

अभि चुपचाप सुनता रहा। वह समझ गया। लेकि[illegible]

नहीं था। माँ को क्या कहा गया होगा, कितना कहा गया होगा, बिना इसका ख्याल किये उसने जो कुछ किया उससे उन्हें ही सब से पहले दंड भोगना पड़ा।

अचानक सुलोचना उसे छाती से लगा उसके सिर पर गाल टिका कर बिफर पड़ीं, "बिना तेरे कैसे जिऊँगी रे !"

अभिजीत चौकन्ना हुआ, माँ ने ऐसा क्यों कहा ?

बगल के कमरे से पिता जी के रह-रह कर खाँसने की आवाज आ रही थी। अभि को यह पता नहीं था कि आज वे भी इस समय अपने कमरे में ही होंगे। यह अचरज की ही नहीं, दुश्चिंता की भी बात थी। हर रोज वे कब के सदर में जा बैठते थे। जब से उसे ज्ञान हुआ तब से वह ऐसा ही देखता आया था। एक दिन के लिये भी इसमें कोई फर्क पड़ा हो ऐसा उसकी जानकारी में नहीं है। बाहर माँ के कमरे के सामने से ही जाया जा सकता था। भारी पैरों की चट्टी की आवाज धीरे-धीरे करीब आ रही थी। सुलोचना फौरन अभि को अपने से अलग कर आँचल से आँसू पोंछने में लग गयी थीं। सुरजीत जाते-जाते ही बिना किसी ओर देखे यह कहते हुए चले गये, "एक घंटे बाद ही रवाना होना है।"

जब तक चट्टी की आवाज दूर जाकर गुम न हो गयी, तब तक अभि चुप, बुत बना खड़ा रहा। इसके बाद भी कुछ बोला नहीं। सिर्फ टुकुर-टुकुर माँ की ओर ताकता रहा। अभी जो यहाँ आतंक छा गया था, वह मिट गया था। हमेशा की तरह वहाँ सन्नाटा घिर आया। अभ्यास से बन गया संयम के बाँध में अगर कहीं दरार बनती नजर आती है तो वह क्षणिक ही होती है। वह किसी की निगाह की पकड़ में नहीं आती। अन्तराल में जो भूचाल मचा था उसके सिर्फ एक झोंके का साक्षी वह रह जाता है। बाहर उसका कोई प्रभाव नजर नहीं आता और न ही बात-चीत में ही उस आवेग का पता चलता है।

अभि के माथे पर जो बाल बिखर आये थे उन्हें प्यार से ठीक करते हुए सहज भाव से सुलोचना बोलीं, "तुझे काशी जाना होगा। अपनी दादीजी के पास। वहीं तेरी पढ़ाई होगी। वहाँ तू रह सकेगा ?"

अभि का मन तड़प उठा। उम्र कच्ची है फिर भी वह समझ गया-उसे माँ से दूर हटाया जा रहा है। यही उसे दंड मिला है। अकेले उसे ही नहीं, उसके संग माँ को भी। उसके लिये माँ जितनी माँ है उनके लिये वह उससे कहीं अधिक है, यह जैसे वह जानता है, वैसे दंड देने वाला भी अनजान नहीं है। परन्तु इस समय उसे अपनी बात ही बड़ी लगने लगी। जब से वह जनमा तब से आज तक वह माँ से अलग कभी नहीं हुआ। चौबीस घंटे के लिये भी अलग रहा हो ऐसा उसे ख्याल नहीं। साथ ही इतनी बड़ी दुनिया में कहीं भी मन उसका नहीं लगा। इस लगाव ने ही उसे माँ के इतने निकट ला दिया था। उसके मन की गांठ धीरे-धीरे और भी मजबूत हो गयी थी।

कोई लड़का जब बड़ा होता है, तब माँ की गोद के दायरे से उसे हटना पड़ता है। चारो तरफ की लालसाओं के वह वश में होने लगता है। बहुत सारे बन्धन उसे कसने लगते हैं। माँ से दिनो-दिन उसकी दूरियाँ बढ़ती जाती हैं। यही संसार का नियम है। बच्चे बड़े होते हैं, उनके मन मे पंख उग आते हैं। ऐसे में माँ की गोद छोटी-सी नीड लगती है। उसमे वह समाया नही रह सकता। जैसे परिवार मे अभिजीत पैदा हुआ वहाँ यह चक्कर और भी अधिक जटिल है। वहाँ पुरुषों की जिन्दगी बाहर ही बाहर की होती है। बच्चे जल्दी ही सयाने हो जाते हैं। अन्दर महल से तड़प कर वे भी बाहर आ जाते हैं। दूसरे सभी का भी यही हाल हुआ है। अभि उनसे अलग थोड़े ही है। फिर भी उसके मामले मे हवा का रुख उल्टा ही नजर आया। अभि, इस खानदान का जो तौर-तरीका रहा है, उससे कदम मिला कर नही चल पाया। इसीलिये कही वह अनुकूलता न पा माँ के आँचल मे सिमटा रहा।

और अब उसे माँ को छोड़ कर दूर, बहुत दूर जाना होगा। पता नही कब तक के लिये? उसका मन मसोस उठा।

सुलोचना अब तक अभि की आँखो मे निहारती रही थी। जो भाव उन आँखों मे रूप ले रही थी, उसका हर आखर उनके मन पर अंकित होता जा रहा था। चेहरे पर इस दर्द का आभास तक नही था। जैसे कुछ हुआ ही नही, इस तरह वे हँस कर बोलीं, "इतना क्या सोचने लगा रे! क्या कोई जीवन भर माँ के पास रहा है? तू सयाना हुआ। बाहर जाकर पढ़े-लिखेगा नही तो आदमी कैसे बनेगा?"

अभिजीत कह सकता था, माँ अभी भी गाँव की पढ़ाई दो बरस बाकी है। आज ही काशी जाकर पढ़ने का सवाल क्यो उठा? पर उसने कुछ कहा नहीं। माँ क्या यह जानती नही! वह सिर्फ उनकी सहज मुस्कुराहट को गौर से देखता रहा। वे अपने अन्तर मे जिस बेबसी का काँटा बहुत जतन से छिपाये थी, वही वह अपनी दृष्टि टिकाये था। उसने देखा, माँ का वही असहाय रूप, जिसे कल रात अंधेरे छज्जे के एक कोने मे देख कर वह पागल हो उठा था। वह आज की इस मुस्कराहट मे और भी अधिक साफ नजर आया।

यह सब कुछ सोच लेने के बाद उसका अपना दुःख बौना मालूम पड़ने लगा। माँ के इस अपमान और ग्लानि ने ही उसके मन के विक्षोभ और क्रोध को साहस सौंपा था। वह भी सहज भाव से हँसते हुए बोला, "माँ, तुम जरा भी न सोचो, मैं दादी जी के पास बड़े मजे मे रहूँगा।" यह कह कर फौरन वह अपने कमरे मे चला गया और उसने दरवाजा जोर से बन्द कर लिया।

माँ और बेटे के मन का यह हृदय-विदारक छल दोनो के मन मे ही रह गया। घंटे भर बाद बिचले महल की ड्योढी पर खड़ी सुलोचना, जब पुत्र को विदा दे रही थी, उस समय भी उनके होंठो पर वही मुस्कराहट झलक रही थी। अभि भी मुँह को अपनी

हुई हूक जी-जान से छिपाने के प्रयत्न में अपने निचले होंठ दाँतों से काटने लगा था। बग्घी के दरवाजे तक पहुँच, पायदान पर पैर रखते ही वह फूट पड़ा था। उसके भइया इन्द्रजीत ने उसे बाँहों में भर लिया था। बग्घी में उसे बगल में लेकर वे बैठे रहे। वे ही उसे काशी पहुँचा आये।

काशी में कई वार उसकी मुलाकात भइया से हुई थी। एक बार पिता जी भी मिले थे। वे दादी से मिलने गये थे। दादी अपने पुत्र के सामने ही गंगा-लाभ कर चुकी थीं। पर माँ से उसकी भेंट कभी नहीं हुई। उसके जाने के बाद वह छह बरस तक जीवित रहीं। जब तक बिस्तर नहीं पकड़ लिया तब तक वे घर के सभी काम करती-करवाती रहीं। कहीं भी कोई कमी आने नहीं दी।

छोटे लड़के अमि का जिक्र भी उन्होंने कभी किसी से नहीं किया। न घर-परिवार के लोगों ने ही कभी उनके मुंह से कुछ सुना। पत्र आने में जब देर होती तो महामाया अपने पति से तार दिलवा देतीं। उत्तर में हाल-चाल मिल जाता था। उसे वह सासुजी को स्वयं बता देती थी और वे चुपचाप सुन भर लेती थीं। कभी कोई इच्छा भी व्यक्त नहीं की।

जब वे बहुत बीमार पड़ीं, तो इन्द्रजीत ने एक रोज उनसे कहा, "अमि को तार देकर बुला लें जब से वह गया है एक दिन के लिये भी नहीं आया।"

सुलोचना ने फौरन कहा था, "नहीं, नहीं। उसकी पढ़ाई में बाधा पहुँचेगी।"

माँ को इन्द्रजीत पहचानता था। फिर उसने कभी कुछ नहीं कहा।

कुछ क्षण बाद सुलोचना ने खुद ही कहा था, "मेरी बीमारी का हाल उसे मत लिखना।"

मौत सिरहाने खड़ी है, यह बात सभी के छिपाये भी उनसे छिपी नहीं थी। ऐसी दशा में भी उन्होंने एक-एक का ख्याल रखा था। नौकर-नौकरानियों तक को बुला-बुला कर उनके घर-परिवार, बाल-बच्चे सभी के बारे में पूछ-ताछ की, आदेश-निर्देश देती रहीं। यदि किसी की सुध न ली तो वह था अमि।

कई दिनों बाद बहूरानी उनके पास बैठी उनकी पीठ सहला रही थीं। कुछ करना बाकी नहीं था, सिर्फ आखिरी घड़ी की इन्तजारी थी। उस क्षण भी होश थी। रह-रह कर पल-मात्र को वे बेसुध हो जातीं और फिर फौरन पलकें उभार कर देखने भी लगती थीं। उनकी निगाह अचानक पतोहू के चेहरे पर पड़ी और वे बोल उठी थीं, "अरे, तू रो रही है···तेरी आँखों में आँसू····बहू, मुझे और कष्ट न दे रे···! सब के सामने मैं जा रही हूँ, बड़े भाग्य! बस सिर्फ···।" इससे आगे वे बोल न सकीं।

वहूरानी उनके पैरो से चिपक गयी। सिसकियाँ लेती हुई बोली, "माँ, आप कह भर दीजिये, लाला को तार दिलवा दूँ।"

उत्तर में सुलोचना की आंखो के कोने से आँसू के दो कतरे लुढ़क कर चू गये। इशारे से बहू को बुला कर बाँहों में लेकर उन्हों ने रुक-रुक कहा, "मेरा अभि इस घर मे आये, यह इच्छा नही है बहूरानी !"

महामाया कुछ बोल न पायी, केवल उन्हे तकती रहीं।

सुलोचना पुन : बोली, "मेरे जाने के बाद उसे बुला लेना। और मेरी तरफ से यह कहना, कहना कि···पर कोई भी माँ अपने बेटे से यह कभी नही कहती···बडी मुश्किल तो यह है।"

महामाया साँस रोके इस अपेक्षा में थी कि सास क्या कहना चाहती हैं, कि तभी बाहर से वैद्यजी के आने की आहट मिली। साथ ही पुनि यामां ने दरवाजे से गरदन निकाल कर हट जाने का आंखो से इशारा किया। बहूरानी के हटे बिना वैद्य जी कमरे मे आते भी तो कैसे ! महामाया चटपट पिछवाडे के दरवाजे से बाहर निकल गयी।

वैद्य जी आये। रोगिणी को देखते ही उनके ललाट पर शिकन पडी। इन्द्रजीत उनके पीछे आकर खडा हो गया था। वैद्यजी ने मुड कर उसकी ओर देखा, फिर पलग के पास पडी कुर्सी पर बैठ गये और बिछावन पर पडे कुम्हलाये तथा सुस्त हाथ उठा कर उँगलियाँ नाडी पर रखी ही थी कि वे चौंक उठे। गहरी साँस लेकर इन्द्रजीत से बोले, "सुरजीत बाबू को बुलाइये।"

कोई उन्हे बुलाने दौडा गया। इन्द्रजीत आगे बढ कर माँ को एक टक देखने लगा।

बगल के कमरे मे उढके पल्ले की ओट में बेचैन-सी बहूरानी खडी रही। एक प्राचीन जमींदार के घराने की जवान पतोहू का बाहर के लोगो के सामने होना, ओछी बात थी। परिचित, घरेलू वैद्यजी के सामने भी वह नही हो सकती। पर वैद्यजी के उतरे कंठ की आवाज सुनते ही उसका होश उड गया। वह दौडी आयीं और माँ जैसी सासु से लिपट गयी। वे बहूरानी के लिये माँ से भी बढ़ कर थी। तब वह सिर्फ बारह-तेरह की नवेली थी, तब एक गरीब घराने से अपने रूप-गुण के कारण ही इतने बडे और ऐसे प्रतिष्ठित परिवार मे आ गयी थी। इसके बाद वह मैके कभी नही गयी। धीरे-धीरे अपनी माँ की शक्ल उसके मन से उतर गयी थी और जो उस पर छा गयी थी जो वह भी आज सदा के लिये चली गयी।

यह अजाना ही रह गया कि बिटिया की रिक्तता की पूरक पतोहू से वह अभि-जीत के लिये कौन-सी ऐसी गोपनीय बात रहना चाहती थी किन्तु कह नही पायीं। आज से छह-सात बरस पहले दिखावे का हँसी हँस कर जिस बेटे को विदा था,

अन्तिम घड़ी में भी उसे देखना क्यों नहीं चाहा, यह क्या उनका हार न मानने वाला हठ था या कुछ और ! जो कुछ भी हो पर वह एक निर्मम रहस्य-आवरण में ही ढंका रह गया ।

सुरजीत बाबू सदर महल वाले कमरे में ही नित्य के नियम के अनुसार उपस्थित थे । पत्नी की ड्योढ़ी पर जब वे पहुँचे, उस समय वैद्यजी अन्दर से बाहर निकल रहे थे। इस परिवार से वे एक लंबे अरसे से जुड़े थे, सिर्फ वैद्य ही नहीं थे, दुःख-सुख, आफत-विपत के हिस्सेदार भी थे । पलक उभार कर पल भर के लिये उन्होंने सुरजीत बाबू की ओर देखा फिर आँखें नीचे गड़ा ली थीं ।

कमरे में लोग भर गये थे । अपने-पराये, शरणागत, दास-दासियाँ सभी जुट गये थे । एक सुर में रुलाई उमड़-घुमड़ रही थी । सभी सिसक रहे थे । फूट कर रोने का जैसे किसी में साहस ही नहीं था । देखते ही देखते जिन्होंने आँखें मूंद लीं । जिस प्रकार वे चुपचाप मुंह मोड़ गयीं, उसी प्रकार उन्हें चुपचाप विदाई भी देनी होगी । चिल्ला कर, सिर पीट कर उनकी चिर-निद्रा भंग करना उचित नहीं होगा ।

ड्योढ़ी के बाहर जो लोग खड़े थे, उनने अगल-बगल हट कर राह बना दी । सुरजीत धीरे-धीरे आगे बढ़ गये थे । धर्मपत्नी की सेज के पास जाकर कई क्षण खड़े रहे । उपस्थिति की आँखें बचा कर एक गहरी साँस ली थी फिर सिर झुका कर बाहर निकल गये थे ।

जब नदी का कोई किनारा ढहने लगता है, तब आते-जाते लोगों को मुट्ठी भर मिट्टी ही गिरती नजर आती है, लेकिन यह पता उन्हें नहीं होता कि इस ढाही का आरंभ दरअसल बहुत दिनों पहले हो चुका है, क्षय भीतर ही भीतर होता रहा है ।

स्वरूपकांदी के बंद्योपाध्याय परिवार में भी यह क्रम भीतर ही भीतर जारी था । एक धर्म-परायणा नारी अपनी त्याग-निष्ठा, सेवा-परायणता और संयम के सुदृढ़ बांध से उसे संभाले रही । वही चली गयी । अब ढाही नंगे रूप में प्रकट हुई ।

पहली बलि खानदान के बड़े लड़के की चढ़ी—इन्द्रजीत की । भाग्य का कुछ ऐसा चक्र चला कि पिता ने स्वयं उसे नाश के मुंह में धकेल दिया ।

दक्खिन में सुन्दरबन के बादा नामक इलाके में इनकी जमींदारी थी बाखर-गंज । छोटे-छोटे कई साधारण गांव का मालिकाना था । प्रजाओं की गिनती भी किसी बड़ी जमींदारी की अपेक्षा बहुत कम थी । किन्तु वे थे बड़े खूंखार । किसी के दबाव को मानना उनके स्वभाव के विपरीत था । बल्कि यह सब वहां की मिट्टी में ही नहीं था ।

आँखें खुलते ही सामने उफनाती गंगा दीखती और बगल में हाहाकार करता जंगल। दोनों में कोई भी मित्र नहीं। दोनों ओर मौत का आतंक। जल में घड़ियाल, थल पर बाघ। नहाते वक्त कब एक पैर शरीर से अलग हो जायेगा, कोई ठीक नहीं। लकड़ी चुनने गये कि तेंदुआ का ग्रास बनना पड़ेगा और ऊपर से आँधी-तूफान, कब आ जाए, कोई जानता न था। यहाँ जो भी आया कुछ गोबर ही गया।

रौद्र प्रकृति में जिनका जन्म हो और जन्म से ही जिन्हें खोने की बाध्यता हो, उनका स्वभाव भी वैसा ही होगा, निष्ठुर, कठोर, जिद्दी।

पर बादा के प्राकृतिक परिवेश का दूसरा रूप भी है। एक मंगलमय रूप। यह केवल तोड़ता ही नहीं, बनाता भी है। जैसे लेता है, वैसे ही देता भी है। खेत में हरी-भरी फसल, नदी-नहरों में विचरती मछलियाँ, बाग-बगीचों में सुपारी-नारियल का अम्बार। यह सब तो है, मगर कब वह लेगा, कब वह देगा, यह वही जाने।

यहाँ के लोग भी ऐसे ही हैं। खुश हुए तो सब लुटा दिया, नाराज हुए तो सब लूटने में भी हिचक नहीं।

जमींदार से इनका वास्ता बड़ा बीहड़ था। टूटने-जुड़ने का क्रम जिन्दगी भर चलता रहता। इस वक्त खुशामद में झुके तो उस वक्त क्रोध में तने हुए। आज जो लाठी पैरों के नीचे है, कल वही सिर पर टूट सकती है। सवेरे माफी माँगने में मशगूल, शाम को जान लेने को मुस्तैद।

स्वरूपकाठी के प्रत्येक गुमाश्ते इस विलक्षणता से परिचित थे और यहाँ की जमींदारी में अमला-अमीन के चुनाव में हमेशा इसका ख्याल रखा जाता था। जमींदारी छोटी है और साधारण भी। पर नायब के ओहदे पर जो आते थे वे दूसरी जगहों की तुलना में अधिक अनुभवी, कुशल और चतुर होते। अलावे इसके भी झगड़े होते ही रहते, दंगा-फसाद, खून-हत्या के कई फौजदारी केस चलते ही रहते।

सुलोचना जिस दिन से गयी, उसी दिन से मालिक अपने को धीरे-धीरे सब ओर से समेटने लगे थे। रोज एक बार गद्दी में जा बैठते। मगर पहले की तरह भूल-चूक में हाथ नहीं डालते। कोई जटिल समस्या आयी तो कुछ कह-बता दिया। कभी-कभार खास नायब को बुला कर कहते कि इन्द्र से पूछ लो। मेरा अब क्या? उसे ही तो अब सब कुछ देखना-समझना है।

इन्द्रजीत भी कुछ-कुछ काम देखने लगा था। उसकी गद्दी अलग थी। उम्र के लिहाज से और वंश-परंपरा के अनुसार कई मित्र भी जुट गये थे। स्वभाव में दम्भ, यानी वंशगत वैभव और मर्यादा का गुमान। और सिर बिला वजह हठी और उग्र। अगल-बगल के लिए उतना सजग नहीं। समय बड़ी तेजी से बदलता जा रहा था। आज जमींदार पहले की तरह प्रजा के माँ-बाप नहीं रहे। समय के अनुसार चलना होगा—इस यथार्थ-ज्ञान का अभाव इन्द्रजीत में खूब था।

सुरजीत यह महसूस करते और सोच में डूबे रहते।

यह हुआ कैसे ! उनके दो पुत्र हैं। एक में उनका स्वभाव ही नहीं और दूसरा वह सीमा पार कर गया है। एक उनके बारे में एकदम अचेत और दूसरा बेहिसाब सचेत। दोनों में कोई भी स्वभाविक नहीं। दुनिया में अस्वाभाविक होने पर प्रायश्चित करना पड़ता है। अपने वातावरण को अपने अनुसार नहीं बनाने या खुद को उसमें नहीं ढालने से प्रकृति उसे माफ़ नहीं करती। इसलिए एक को पहले ही हटना पड़ा। हटाया खुद ही। पर वे तो थे निमित्त-मात्र। यही उसके लिए प्रकृति के द्वारा दिया गया दंड था। और दूसरे को भी अपने अति का फल भोगना पड़ेगा ही।

वह भोग सामने ही है, सुरजीत को इसका अन्दाज नहीं था। होता तो वे सतर्क रहते, उसे मिटाने की कोशिश करते।

बाखरगंज की जमींदारी से समाचार आया कि तीन गाँवों के खेतिहरों ने खजाना देना बन्द कर दिया है। उनके पीछे है वही मेहरबक्स, उन्हीं के आधीन एक छोटा जोतदार। वह जितान धूर्त है उतना ही लापरवाह। कभी लुक-छिप कर जमींदार के विरोध में आग लगाता था, अब खुलकर सामने आ डटा है। नायब जी ने उसे बुला कर समझौते का प्रयत्न किया था। पर वह कुछ मानने को तैयार ही नहीं हुआ।

जो नौकर नायब जी का पत्र लेकर आया था, उससे उस व्यक्ति के बारे में एक मौखिक रिपोर्ट भी मिली। गद्दी में बैठकर बहुत से लोगों के सामने वह कह गया था—

"आप से कुछ कहना-सुनना नहीं है नायब जी। आप हैं किस खेत की मूली। समझौता तो मालिक से होगा। उन्हें बुलाइये—"

यह कह कर बिना नायब के उत्तर की अपेक्षा किये दल-बल सहित वह चला गया था।

चिट्ठीरसैन जब जमींदार के सामने अपनी आँखों देखा वर्णन का बयान कर रहा था, तब वहाँ इन्द्रजीत उपस्थित था। वह चुप नहीं रह सका। वह ऐंठ कर बोला, "और तुम्हारे नायब साहब ने क्या किया ?"

"जी वे करते भी क्या ?"

"मूर्ख !" दाँत पीसते हुए दबे गले से वे हुंकार उठे। स्वगत कथन होते हुए भी, सुना सभी ने।

सुरजीत तकिये का सहारा लेकर गड़गड़ा पी रहे थे। नेचा होंठो से हटा कर उससे बोले, "अच्छा, तुम अभी जाओ।"

वह चला गया। सुरजीत ने नायब के पत्र को पुत्र की ओर बढ़ा दिया। इन्द्रजीत ने सरसरी निगाह से पत्र पढ़ कर ताव के साथ कहा, "मैंने पहले ही कहा था, ऐसे कमजोर नायब से बाखरगंज का काम नहीं चल सकता। केले का भुरता और भात खाकर जमींदारी नहीं चलाई जाती। वहाँ एक पट्ठे की जरूरत है।"

गुरजीत यह महसूस करते और सोच में डूबे रहते।

यह हुआ कैसे! उनके दो पुत्र हैं। एक में उनका स्वभाव ही नहीं और दूसरा वह सीमा पार कर गया है। एक उनके बारे में एकदम अचेत और दूसरा बेहिसाब सचेत। दोनों में कोई भी स्वभाविक नहीं। दुनिया में अस्वाभाविक होने पर प्रायश्चित करना पड़ता है। अपने वातावरण को अपने अनुसार नहीं बनाने या खुद को उसमें नहीं ढालने से प्रकृति उसे माफ़ नहीं करती। इसलिए एक को पहले ही हटना पड़ा। हटाया खुद ही। पर वे तो थे निमित्त-मात्र। यही उसके लिए प्रकृति के द्वारा दिया गया दंड था। और दूसरे को भी अपने अति का फल भोगना पड़ेगा ही।

वह भोग सामने ही है, गुरजीत को इसका अन्दाज नहीं था। होता तो वे सतर्क रहते, उसे मिटाने की कोशिश करते।

बाखरगंज की जमींदारी से समाचार आया कि तीन गाँवों के खेतिहरों ने खजाना देना बन्द कर दिया है। उनके पीछे है वही मेहरबक्स, उन्हीं के आधीन एक छोटा जोतदार। वह जितना धूर्त है उतना ही लापरवाह। कभी लुक-छिप कर जमींदार के विरोध में आग लगाता था, अब खुलकर सामने आ डटा है। नायब जी ने उसे बुला कर समझौते का प्रयत्न किया था। पर वह कुछ मानने को तैयार ही नहीं हुआ।

जो नौकर नायब जी का पत्र लेकर आया था, उससे उस व्यक्ति के बारे में एक मौखिक रिपोर्ट भी मिली। गद्दी में बैठकर बहुत से लोगों के सामने वह कह गया था—

"आप से कुछ कहना-सुनना नहीं है नायब जी। आप हैं किस खेत की मूली। समझौता तो मालिक से होगा। उन्हें बुलाइये—"

यह कह कर बिना नायब के उत्तर की अपेक्षा किये दल-बल सहित वह चला गया था।

चिट्ठीरसैन जब जमींदार के सामने अपनी आँखों देखा वर्णन का बयान कर रहा था, तब वहाँ इन्द्रजीत उपस्थित था। वह चुप नहीं रह सका। वह ऐंठ कर बोला, "और तुम्हारे नायब साहब ने क्या किया?"

"जी वे करते भी क्या?"

"मूर्ख!" दांत पीसते हुए दबे गले से वे हुँकार उठे। स्वगत कथन होते हुए भी, सुना सभी ने।

गुरजीत तकिये का सहारा लेकर गड़गड़ा पी रहे थे। नेचा होंठो से हटा कर उगते बोले, "अच्छा, तुम अभी जाओ।"

वह चला गया। गुरजीत ने नायब के पत्र को पुत्र की ओर बढ़ा दिया। इन्द्रजीत ने सरसरी निगाह से पत्र पढ़ कर ताव के साथ कहा, "मैंने पहले ही कहा था, ऐसे कमजोर नायब से बाखरगंज का काम नहीं चल सकता। केले का भुरता और भात खाकर जमींदारी नहीं चलाई जाती। वहाँ एक पट्ठे की जरूरत है।"

इन्द्रजीत को खबर उसे नहीं दी गयी। महामाया की इच्छा थी कि खबर भेज दे। पर सम्भव नहीं हो सका। क्या फायदा! वह जानती थी, आयेगा नहीं। और आकर ही क्या करेगा? चिता-भस्म देखे बिना क्या बिगड़ना है! दूर है, दूर ही रहे।

इसके बाद जिस दिन भानिक ने भी मुँह मोड़ लिया उस दिन भी महामाया ने खुद खबर नहीं भेजी। सदर-नायब को यह कहा गया था कि मौत की खबर के साथ उसे यह कहा जाये कि बड़े भाई के अभाव में पिता का श्राद्ध, उसे ही करना है। और अब से वही सारी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी भी है। वह बिना झिझक आये तथा अपना सब सँभाले।

उत्तर में अभिजीत ने कहला दिया था, "श्राद्ध का काम-काज वह अपनी औकात के मुताबिक यहीं कर लेगा, माँ के वक्त जैसे कर लिया था। सम्पत्ति की मालकिन बनी रहें बहूरानी। वह जिस हाल में है, उसी से रहकर दूर रहना चाहता है।

इसी प्रकार दिन कट रहे थे। इसके बाद देश आजाद हुआ और साथ ही पैदा हुई जटिल समस्याएँ। दिनों दिन जटिलताएँ और भी जटिल होने लगी। धीरे-धीरे जो समस्या थी वह जमींदारी ही सत्ता के हाथ में चली गयी। बहूरानी ने सोच लिया—चलो झमेला मिटा। इसके बाद लगा कि समस्या मिटी नहीं, सिर्फ उसने नया रूप ले लिया है। ऐसा रूप जिससे वह तथा उनके कर्मचारी बिल्कुल अनभिज्ञ हैं। महामाया बड़ी चिंता में पड़ गयी। सदर नायब को अभिजीत के पास भेजा। उन्हें एक पत्र लिखकर दिया। वह पत्र सिर्फ सपत्ति के बारे में होता तो अभिजीत उत्तर लिखकर भेज देता पर उसमें कुछ और भी लिखा था, जिसकी वह अपेक्षा नहीं कर सका।

पत्र की अन्तिम पंक्तियों को अभिजीत ने कई बार पढ़ा, जैसे वह कोई दूसरी बहूरानी हो। जिस सुहागिन को उसने पहली बार देखा था एक समारोह की शाम में। उस समय वह थी ही कितनी बड़ी। इसके बाद वे दोनों अगल-बगल सयाने हुए, भाई बहन के समान। बहूरानी उसे लोगों के सामने 'देवर जी' कहती और अकेले में अभि कह कर पुकारती थी। अपने छोटे देवर को भी अपना नाम लेकर पुकारना सिखा दिया था, "क्या भाभी-भाभी करते रहते हो! हमें अच्छा नहीं लगता।"

"अरे वाह, तुम तो बड़ी हो।" यानी उसे जो बताया गया था उसे ही उसने दुहरा दिया। बहूरानी ने उसे चुटकी में फुर्र कर दिया, "धत्त, बड़ी आयी मैं बड़ी।"

"तो क्या कह कर बुलायें?"

"क्या मेरा कोई नाम नहीं है? तुम्हें सिर्फ माया कहने में क्या दिक्कत है। मेरी सखियाँ तो यही नाम लेकर पुकारती थी।"

यहाँ उसकी सखियाँ नहीं हैं। माया के नाम पर कोई अगर है तो अभि ही है। पर वह बहुत शर्मीला है। नाम लेकर वह किसी तरह भी नहीं पुकार सकता। तब तय हुआ कि वह 'मायादी' कहा करे।

शिवदास राय बूढ़े हो चुके थे। जब वे सदर- नायब थे, तभी मालिक के इस पुत्र के बारे में सुना था। वे बोले, "इतनी जल्दी क्या है ? अभी तो आप आये हैं। आराम करिये। दोपहर के बाद बुलवा लेंगे ....। यों उसे बुलाना नहीं पड़ेगा। खबर मिलते ही वह खुद आ जायेगा।"

"उसकी मेहरबानी की ताक में मैं बैठा रहना नहीं चाहता।" व्यंग्य के लहजे में इन्द्रजीत ने कहा, "वह मेरा आका नहीं है, यही उसे अहसास कराना है।"

शिवदास गंभीर हो गये। बोले, "वह कोई मामूली जन नहीं है। जोतदार है।"

"मालूम है। बरस में पाँच सौ का खजाना देता है।"

"फिर भी उसका कुछ सम्मान है—।"

"सम्मान !" इन्द्रजीत हँसा। फिर गंभीर होकर बोला, "इसलिए तो आपने उसे सिर पर चढ़ा लिया है।"

इतने पर भी शिवदास ने पकड़वा कर नहीं बुलाया। पर मेहरबक्स के आते ही अपने नायब की वह 'भूल' या 'कमजोरी' इन्द्रजीत ने सुधार दी। मामूली जन के बैठने के लिये पतली लेकिन लंबी पटरी जो पड़ी थी उस पर ही उसे बैठने को कहा गया। वह वहाँ नहीं बैठा। जमींदार के सवालों का जो उसने जवाब दिया वह भी उदंडता के भरा था। इन्द्रजीत ने अचानक हुक्म दिया, "पीठ पर इसकी बाँहें बाँधो।"

नायब और गुमास्ते घबरा उठे। पर मालिक के सम्मान की रक्षा के लिये किसी का मुँह नहीं खुला। वहाँ के मुसलमान प्यादे हुक्म तामिल करने में ना-नुकुर करने लगे। तब इन्द्रजीत ने देशवाली दरवानों को इशारा किया। वे आगे बढ़ आये और उसके दोनों हाथ पीठ पर ले जाकर अंगोछे से बाँध दिया गया। उसने चूं तक नहीं की। सिर्फ जमींदार के बेटे को एक नजर देख भर लिया। इस नजर की जिन्हें पहचान थी वे अन्दर ही अन्दर सिहर उठे। ऐसी नजर सिर्फ विषधर सर्प की होती है।

उसी रात कचहरी में आग लगी। इन्द्रजीत दौड़कर बाहर आया तो अन्धेरे में उड़ता हुआ एक नेजा आया और उसे बेध गया। यह एक अजब हथियार था ! सुपारी के पेड़ के पतले फट्टे को एक ओर तराश कर धारदार बनाया गया था। बहुत तीखा असर वाला हथियार। मालूम पड़ा कि देह इधर-उधर से कट-फट गयी।

माँ के मरने की खबर अभिजीत को समय पर ही भेजी गयी थी। इन्द्रजीत ने पत्र के साथ आदमी भी भेजा था। लेकिन वह नहीं आया। किसलिए आये ? श्राद्ध की बहार देखने ! जरा भी इच्छा नहीं हुई। माँ का अन्तिम कर्म, जो उसे करना चाहिए था, काशी में ही ब्राह्मण बुला कर कर लिया। इसके बाद इधर की कोई खोज खबर ही नहीं ली।

रहे थे कि कहाँ डेरा डालें। तभी उन्हें याद आयी—यहाँ दशाश्वमेध घाट के करीब ही तो स्वरूपकांदी के जमीदार का मकान है। बहुत वर्ष पहले कभी सुरजीत के साथ आये भी थे। यहीं उन्होंने पन्नाबाई को सुना भी था। वह मकान खाली पडा रहता था। मालिक कभी-कभार आते, वहीं ठहरते। इसके बाद उनकी माताजी और बहन काशीवास के लिये आयी। वे सभी एक-एक कर चली गयी। अब यहाँ स्थायी रूप से उन्ही का छोटा लडका अभिजीत रहने लगा था।

अभिजीत की याद उस्ताद जी को आयी। उनकी महफिल मे ही उसे देखा था। एक खास दिन की बात आज भी उन्हे याद है। उसी समय उसका जनेऊ हुआ था। महफिल मे वह उतरे हुए बाल वाले सिर पर जरी की टोपी पहने सभी के साथ बैठा था। प्यारा-सा कुमार। उसके शात चेहरे पर बुद्धि की हल्की-सी आभा थी। आँखें दोनो स्वप्निल। रह-रहकर बरबस उसकी ओर दृष्टि चली गयी थी। सहसा उन्होंने देखा, घुटने पर लयपूर्वक वह लडका ताल दे रहा है। 'सम' और 'अन्तरा' मे उसकी गरदन का हिलना तथा हाथ हिलाने की खास-खास भंगिमा देख कर वे अचम्भे मे पड गये थे। वह यह नही भाँप सका कि उस्ताद जी की निगाह उस पर पड गयी है। वह मगन होकर सुन रहा था।

उन दिनो की महफिल मे सगीत के ज्ञाता, लय तथा ताल के समझदार लोगो की कमी नही थी। उनके बीच कोई भी गायक गाकर आनन्दित ही होते। उस्तादजी को भी यह सुख मिला था। मगर उस महफिल मे उन्हे सबसे अधिक सन्तोष हुआ था उस बालक को सुनते देख कर। उसकी डरी-डरी आँखो की छिपी-छिपी भगिमा से औरो की प्रशसा फीकी पड गयी थी।

उस समय मौका नही मिला था। उस्तादजी ने मन ही मन तय कर लिया था कि दुबारा जब आना होगा, तब सुरजीत से कहेगे कि लडके मे गुण है, उसके लिये कोई व्यवस्था होनी चाहिए। पर यह कहने का सुअवसर मिला कहाँ! कलकत्ते मे ही किसी से उन्हे पता चला था कि लडके को काशी भेज दिया गया है। इस बीच उन्हे भी महफिल के लिये बुलाया नही गया, और सुरजीत बाबू भी स्वर्ग सिधार गये। बधोपाध्याय परिवार से उनका नाता ही टूट-सा गया।

अगर वे काशी नही आते तो फिर से यह सब सोचा ही नही जा सकता था। मगर ताँगे पर बैठ कर उस्तादजी सोचने लगे, जो लडका अभिजीत उस दिन मुग्ध-मन उनका गाना सुन रहा था, उसकी मति-गति आज कैसी होगी, कौन जाने? हो सकता है उन्हें पहचाने भी नही, सो अचानक पुराने सम्बन्ध का जिक्र कर वहाँ ठहरने मे उन्हे हिचक हुई।

क्यो नही कही और ठहरा जाये! विचार की गति जिधर भी हो लेकिन ताँगा तो उसी पुरानी राह पर बढता जा रहा था। शायद कभी की वह दृष्टि जो भीड से

अमि यही कह कर पुकारता लेकिन अगल-वगल कोई न होता तव ।

कम दिन नहीं, कई वर्षों तक । हँसी-ठट्ठा, छेड़खानियाँ, वेमतलव का रूठना-मनाना । वर्षा की मेघ घिरी दोपहरी में जब सब लोग सो जाते, तव दालान में दोनों का भींगना । सवसे छिपकर चील-कोठरी में जा वैठना और लाल मिर्च तथा धनियाँ की पत्ती के साथ ढेरों वेर चट कर जाना । कितना मजेदार लगता ! वे दिन, फिर एक दिन पटाक्षेप हो गया । इसे भी कितने वर्ष वीते !

पत्र रख कर अभिजीत ने पैड खींच लिया । कुछ देर सोचता रहा—क्या लिखें । मन में वातों की भीड़ वढती ही जा रही थी । पर कलम की नोंक से निकली सिर्फ एक पंक्ति—तुम्हारा पत्र मिला । तीन चार दिनों में ही पहुँच रहा हूँ ।

३

उस्ताद जी अपने नियत आसन पर आ वैठे । वही पुराना आसन । मोटा-सा कश्मीरी गलीचा, पीठ के नीचे वही मखमल में लिपटा तकिया । लेकिन उसका गाढ़ा रंग फीका हो गया है । वड़ा-सा हॉल, उसमें वरती गयी वस्तुओं पर भी महाकाल के कठोर पंजे की छाया पड़ गयी है ।

चारो तरफ एक वार वूढ़े उस्ताद जी ने आँखें फेर लीं । इसी कमरे में वहुत वार आये और गा चुके हैं । पिछली वार जव आये थे तो विल्कुल सामने ही महफिल के मालिक आसीन थे । उनके अगल-वगल, कायदे के अनुसार जगह छोड़कर जो लोग वैठे थे उनमें से वहुत से जाने-पहचाने चेहरों पर नजर पड़ी । मालिक के मित्र, आत्मीय, कुछ कृपापात्र । प्रायः सभी समझदार श्रोता थे । वे जिला व शहर कलकत्ते से चुन-चुन कर वुलाये जाते थे । आज वे परिचित चेहरे अनुपस्थित थे ।

आज का दृश्य विल्कुल भिन्न था । वंद्योपाध्याय परिवार के वर्तमान वंशधर, वंश का एकमात्र जीवित पुरुष उपस्थित था । पर वह पिता के विशिष्ट आसन पर नहीं वैठा था । वह आसन विछाया ही नहीं गया था । जन-साधारण के लिये जो जाजिम यहाँ-से वहाँ तक विछी थी, उसी पर एक किनारे वह भी वैठा था । अगल-वगल के लोगों से अलगाव का विना ख्याल किये । जैसे प्रधान नहीं, कोई मामूली श्रोता है । फिर उसी के लिये ही आज का यह आयोजन आयोजित था । इसका भी एक छोटा-सा इतिहास है ।

कई वर्ष पहले उस्ताद जी तीर्थ-यात्रा को गये थे । काशी पहुँच कर वे सीत्र

रहे थे कि कहाँ डेरा डालें। तभी उन्हें याद आयी---यहाँ दशाश्वमेघ घाट के करीब ही तो स्वरूपकांदी के जमीदार का मकान है। बहुत वर्ष पहले कभी सुरजीत के साथ आये भी थे। यही उन्होंने पन्नाबाई को सुना भी था। वह मकान खाली पड़ा रहता था। मालिक कभी-कभार आते, वहीं ठहरते। इसके बाद उनकी माताजी और बहन काशीवास के लिये आयी। वे सभी एक-एक कर चली गयी। अब यहाँ स्थायी रूप से उन्हीं का छोटा लड़का अभिजीत रहने लगा था।

अभिजीत की याद उस्ताद जी को आयी। उनकी महफिल मे ही उसे देखा था। एक खास दिन की बात आज भी उन्हें याद है। उसी समय उसका जनेऊ हुआ था। महफिल मे वह उतरे हुए बाल वाले सिर पर जरी की टोपी पहने सभी के साथ बैठा था। प्यारा-सा कुमार। उसके शात चेहरे पर बुद्धि की हल्की-सी आभा थी। आँखें दोनो स्वप्निल। रह-रहकर बरबस उसकी ओर दृष्टि चली गयी थी। सहसा उन्होंने देखा, घुटने पर लयपूर्वक वह लडका ताल दे रहा है। 'सम' और 'अन्तरा' में उसकी गरदन का हिलना तथा हाथ हिलाने की खास-खास भगिमा देख कर वे अचम्भे मे पड गये थे। वह यह नही भाँप सका कि उस्ताद जी की निगाह उस पर पड गयी है। वह मगन होकर सुन रहा था।

उन दिनो की महफिल मे सगीत के ज्ञाता, लय तथा ताल के समझदार लोगो की कमी नही थी। उनके बीच कोई भी गायक गाकर आनन्दित ही होते। उस्तादजी को भी यह सुख मिला था। मगर उस महफिल मे उन्हें सबसे अधिक सन्तोष हुआ था उस बालक को सुनते देख कर। उसकी डरी-डरी आँखो की छिपी-छिपी भगिमा से औरो की प्रशसा फीकी पड गयी थी।

उस समय मौका नही मिला था। उस्तादजी ने मन ही मन तय कर लिया था कि दुबारा जब आना होगा, तब सुरजीत से कहेंगे कि लडके मे गुण है, उसके लिये कोई व्यवस्था होनी चाहिए। पर यह कहने का सुअवसर मिला कहाँ! कलकत्ते मे ही किसी से उन्हें पता चला था कि लडके को काशी भेज दिया गया है। इस बीच उन्हें भी महफिल के लिये बुलाया नही गया, और सुरजीत बाबू भी स्वर्ग सिधार गये। बधोपाध्याय परिवार से उनका नाता ही टूट सा गया।

अगर वे काशी नही आते तो फिर से यह सब सोचा ही नही जा सकता था। मगर ताँगे पर बैठ कर उस्तादजी सोचने लगे, जो लडका अभिजीत उस दिन मुग्ध-मन उनका गाना सुन रहा था, उसकी मति-गति आज कैसी होगी, कौन जाने? हो सकता है उन्हें पहचाने भी नही, सो अचानक पुराने सम्बन्ध का जिक्र कर वहाँ ठहरने मे उन्हें हिचक हुई।

क्यो नही कही और ठहरा जाये! विचार की गति जिधर भी हो लेकिन ताँगा तो उसी पुरानी राह पर बढता जा रहा था। शायद कभी की वह दृष्टि जो भीड से

अलग उस पर गड़ी थी, वही उनके अजाने में अपनी ओर उन्हें खींचे लिये जा रही थी।

मकान ढूंढ़ने में बहुत परेशानी भी नहीं हुई। पर अभिजीत वहाँ नहीं था। जो लोग वहाँ थे, उनसे पता चला कि कई रोज पहले वह हरिद्वार चले गये हैं। वहाँ कई दिन बिता कर और भी आगे जाने का उनका इरादा है; कहाँ-कहाँ जायेंगे वही जानें। दो-एक वर्ष के अन्तर में हिमालय भ्रमण करने का उनका नियम-सा है। कब तक लौटेंगे, यह बता नहीं गये। कभी बता कर जाते भी नहीं।

उस्ताद जी लौटे जा रहे थे। पर पुराने गुमास्ता उन्हें पहचानते थे, यहीं इसी मकान में देखा था। मालिक उन्हें बहुत आदर-सम्मान देते थे, यह वे जानते थे। उन्होंने इसका जिक्र करते हुए ठहरने का आग्रह किया। उस्ताद जी का ना नहीं कर सके।

दूसरे दिन उस्ताद जी गङ्गा-स्नान को जा रहे थे। बगल में ही अभिजीत का कमरा था, जिसका दरवाजा खुला था, सफाई हो रही थी। भीतर निगाह दौड़ाते ही उन्हें दीवाल से लटकता तानपूरा नजर आया। पूछने पर पता चला कि वह मालिक का है। जब यहाँ वे रहते हैं, तब उसका रियाज करते रहते हैं। मन अघा उठा। इस लड़के के लिये कभी जो उन्होंने सोचा था, वह व्यर्थ नहीं गया। व्यर्थ हो ही नहीं सकता। यह विद्या कभी विलुप्त नहीं होती, सोयी रह सकती है। और फिर कब कैसे वह जाग जायेगी यह भी कोई नहीं कह सकता।

यह प्रसंग यहीं समाप्त हो जाता, पर हुआ नहीं। बहुत दिनों बाद उन्हें स्वरूप-कांदी के बंद्योपाध्याय परिवार के सदर-नायब का लिखा एक पत्र मिला। उन्होंने लिखा था— उनके नये मालिक काशी से अपनी जमींदारी में लौट आए हैं। इसी उपलक्ष में एक महफिल का आयोजन किया गया है। बहूरानी की प्रबल इच्छा है कि पहले की तरह ही एक शाम उस्ताद जी अपने पुराने आसन पर आसीन होकर हम लोगों को सुख पहुँचायें।

उस्ताद जी अस्वीकार की मुद्रा में थे। उम्र काफी हो चुकी थी। गाना-बजाना भी लगभग छूट-सा चुका था। अचानक उन्हें याद आया कि नया मालिक तो वही लड़का होगा। बस वे राजी हो गये।

उस्ताद जी अपने श्रोताओं की ओर ही बार-बार देख रहे थे। अभिजीत के अगल-बगल जो लोग बैठे थे, अपरिचित होते हुए भी यह अनुमान वे लगा सके कि उनमें कुछ लोग गाँव के बाशिन्दा हैं, और अधिकतर लोग शहर के निमंत्रित लोग हैं। प्रतिष्ठित-सम्मानित लोग। संगीत की महफिल के रीति-रिवाज के जानकार लोग। मगर उनमें कितने ऐसे हैं जो संगीत के जानकार हैं, यह कहना मुश्किल है। फिर भी ये महफिल की सजावट के लायक तो हैं ही।

यहाँ भी प्रमुख श्रोता ही हैं।

थोड़ा हटकर, जाजिम पर बहुत दूर तक जो लोग जमे बैठे हैं वे मामूली लोग हैं, और जो गिनती में कम नहीं हैं। चेहरे पर और पहिरावे में हीनता-दीनता की छाप स्पष्ट है। शास्त्रीय संगीत की महफिल में ऐसे 'निचले तबके' के लोग कम ही नजर आते हैं। ये कौन हैं, यहाँ आये कैसे, इसका अनुमान नहीं लगाया जा सका। बुलाये गये हैं या बिना बुलाये आये हैं? उस्ताद जी यह सोच भी नहीं पाये। वद्योपाध्याय परिवार के इस हॉल में ऐसे लोग परंपरा के अनुसार रूप नहीं पाते।

पुरानी सारंगी उस्ताद जी लेने आये थे। और उनका तबलची अचानक बीमार पड़ गया था सो वह आ नहीं सका। उसकी जगह दूसरे को पकड़ लाये थे। वह उतना पक्का नहीं था। इसलिए उनके मन में थोड़ी बेचैनी थी। महफिल में उपस्थित श्रोताओं को देखकर उनका मन और भी उदास हो गया। पर इसे वे छिपाये रहे। अभिजीत से उन्होंने हँसकर पूछा, "क्या सुनोगे?"

"आपकी जो मर्जी!" विनय पूर्वक झेंपते हुए उसने उत्तर दिया।

उस्ताद जी ने ईमन अलापा। उम्र हुई, रियाज का अभाव। स्वर के चढ़ाव-उतार में वह गति नहीं रही। मगर ठाठ वही है। अलाप लेते ही पता चल गया। जब वे गा रहे थे तो उनकी आँखें अभिजीत से मिलती रही थीं। धीरे-धीरे वह मस्त हो उठे। यह किसी से छिपा नहीं रहा। यही गवैये का सब से बड़ा पुरस्कार है, यह संगीत सभी के लिए नहीं होता। किसी को अच्छा लगे या न लगे पर एक को तो लगा यही कलाकार का सबसे बड़ा संतोष है। उस एक के आगे अपने को न्योछावर कर देना उनका स्वभाव होता है।

उस्ताद जी ऐसे ही कलाकार थे। कितने ही उनके महफिल में आये। यह उनकी समस्या कभी नहीं रही। गिनती उनके लिए महत्व की कभी नहीं रही। एक हजार अर्थहीनों में यदि एक ही अर्थपूर्ण हो तो वे अपनी कला को सार्थक मानने वालों में से थे।

बहुत वर्ष पहले जब उस्ताद जी यहाँ आते थे, उस समय होने वाली दो-एक महफिलों की याद अभिजीत को भी है। उन्हीं दिनों की याद करके तथा संगीत का जितना भी ज्ञान उसने अर्जित किया है उससे वह यह समझ रहा था कि ऐसे गवैये को ऐसी महफिल में खींच लाना ठीक नहीं हुआ। अब उसके लिए उनके योग्य आयोजन करना संभव नहीं था। इसलिए पहले तो वह महामाया के प्रस्ताव पर राजी नहीं हुआ था लेकिन बहूरानी तो आज भी उसी पुराने वद्योपाध्याय परिवार के दौर दिनों में साँस ले रही थी! अब अर्से बाद वंश-परंपरा के हकदार को वापस पाकर, उसके द्वारा पुराने इतिहास का यथासंभव पुनरुद्धार करना ही उनकी मंशा रही हो, यही सोचकर अभिजीत ने विरोध किया था। किन किन को निमन्त्रण भेजा जाय, इसका भार भी

बहूरानी के ऊपर ही था। उन्होंने सदर के नायब से राय-मशविरा करके ही सूची तैयार की थी। जिला और महकमे के कुछ ऊँचे अफसर तथा कई बे-सरकारी प्रमुखों का नाम इसमें दर्ज होना स्वभाविक ही था। स्थानीय सभ्य समाज के कुछ ऐसे लोग भी आमंत्रित थे, जो इस परिवार के पुराने संरक्षक थे। यानी दोनों ने मिलकर मालिक की परंपरा का जितना संभव हो सका कुछ उठा नहीं रखा।

बगल की वह जबर-दखल कॉलोनी उनकी कल्पना में भी जगह नहीं पा सकी। 'शास्त्रीय संगीत' ऊँचे लोगों के लिए है। वे भला यह सब क्या समझेंगे? माना किसी को समझ हो भी, तो उसे यहाँ इस हॉल में बैठाया नहीं जा सकता। ताला खोलते समय आये आधे पागल मिस्त्री का घिघियाना—हम लोग जरा सुनेंगे-सुनकर बहेरानी मन ही मन अचंभे में डूब गयी थीं। और अभिजीत ने जब आने की छूट दे दी तो पहले इस पर वें कुछ विस्मित हुई जरूर पर बाद में इसे कोई महत्व नहीं दिया। उनका ख्याल था कि एक मूर्ख को अभिजीत ने टालने की गरज से यह छूट दी है। उन्हें यह पता नहीं था कि सचमुच वे दल के दल आ जुटेंगे और घर के मालिक उन्हें आदर-सत्कार से ला बैठायेंगे। नायब चुपचाप सब कुछ देखने के लिए बाध्य थे। मगर उनका मुँह लटक आया था। बहूरानी भी भीतर ही भीतर नाराज हो उठीं थीं। फिर उन्होंने यह सोचकर अपने को संतोष दिया कि हो सकता है वर्षों यहाँ नहीं रहने के कारण वह यहाँ की परिस्थिति से अनजान हो। धीरे-धीरे जब समझ जायेगा तो सब ठीक हो जाएगा।

परिस्थिति समझे या न समझे, इस परिवार का लड़का होकर भी अभिजीत ने इतना अवष्य समझ लिया था कि पिछले दिनों ये लोग किसी तरह भी यहाँ नहीं पहुँच सकते थे। जहाँ अधिकार की बात है वह इस वर्ग के लोगों के लिए नहीं उठती। शास्त्रीय संगीत के महफिल में जहाँ कोई उस्ताद गा रहे हों वहाँ पहली पंक्ति में बैठने के अधिकारी हैं, जो विषय के ज्ञाता हैं, उसका मरम समझ सकें और कि रस में डूब सकें। यह ज्ञान या अनुभूति किसी खास वर्ग या जाति की निजी सम्पत्ति नहीं होती। पढ़े-लिखे, अपढ़, ज्ञानी-अज्ञानी तो सभी वर्गों में होते हैं। पढ़ाई-लिखाई, पद-मर्यादा; धन-सम्पत्ति के आधार पर जिन्हें प्रथम स्थान दिया जाता है, उनमें भी ऐसे हो सकते हैं। उसी प्रकार यह सब सीखने का अवसर जिन्हें नहीं मिला, जो अवांछित अतिथि के रूप में दूर पर भीड़ से बैठे हैं उनमें भी मिल सकते हैं।

पर अभिजीत की चिन्ता यह थी कि उस्ताद जी को कहीं बुरा न लगे। ऊपर से हो सकता है वे कुछ न बोलें, पर मन ही मन कुछ सोच न लें। वे जहाँ, जैसे समाज में विचरण करते हैं, वहाँ इनकी पैठ नहीं होती। इनके बीच बैठने के वे अभ्यस्त नहीं भी हो सकते हैं। वे पुराने जमाने के आदमी ठहरे। जिन्दगी भर यही करते रहे। विद्या दायिनी सरस्वती की देन दो है—एक वीणा और दूसरी पुस्तक। वे दूसरे अवदान के

वितरण में जरा भी कंजूसी नहीं करते। कोई भेद नहीं रखते। उनके ख्याल से धनी-गरीब सभी समान रूप से यह अर्जित कर सकते हैं—बिना किसी बाधा-विघ्न के। पर पहले के लिए दरवाजे की मुट्ठी नियमानुसार बन्द रहनी है। विरले ही उस विद्या में पारगत हो सकते हैं। इसके लिए जरूरी है सामाजिक होना। जीवन में जिन्हें जूझना नहीं पड़ता, जो आसानी से अपनी जिन्दगी जीते हैं, वे ही वाग देवी के बायें हाथ का दान पाने का अपना हाथ बढ़ा सकते हैं। यानी इस विद्या में पारगत होने का अधिकार एक बड़े लोगों को ही है। उस्ताद जी जैसे गुणी व्यक्ति ऐसों के द्वारा ही लालित-पालित होते हैं। ऐसा में जो प्रतिभा है, वह धनवानों की कृपा के बिना विकसित नहीं हो सकती, हो सकता है कि अवसर न मिलने पर सदा विलुप्त ही रह जाये। जिनकी गिनती साधारण में है, वे ऐसा को कुछ नहीं दे पाते। ऐसों को जो कुछ मिला है सिर्फ स्वीकृत और पुरस्कार ही नहीं बल्कि जिन्दगी जीने का साधन धनवानों से ही मिलता है।

• यानी उस्ताद जी अगर अभिजीत के साथ कुछ पक्षपात करें और उसी मंशा से इन लोगों को उपेक्षित दृष्टि से देखें, तो उन्हें दोषी ठहराया जा सकता।

आसन पर आसीन होने के बाद ही बस्ती के लोगों पर जब उनकी नजर गयी थी और उसमें जो झलका था वह अभिजीत से छिपा नहीं रहा। मगर वे भाव टिके नहीं रह, यह देखकर उसे कुछ सन्तोष हुआ। वह समझ गया कि ये भी ऐसे ही कला-कार हैं जो अपनी कला में एक बार डूब तो फिर अपने अगल-बगल का ख्याल इन्हें नहीं रहता।

तबलची के मारए उस्ताद जी बीच-बीच में झुंझला उठते थे। वह जब भी बेताल होता कि वे रुककर उसे ताल बताने लगते। यानी उसकी तरफ मुड़कर सिर झक-झोर कर बोल का उच्चारण करने लगते थे। बहुतों की समझ के यह परे था, यहाँ वे मान लेते कि यह भी गाने का ही कोई टुकड़ा है। अभिजीत उखड़-उखड़ जाता था। पर करे क्या, उसकी समझ में यह नहीं आ रहा था। यहाँ दूसरा कोई अच्छा तबलची भी नहीं मिल सकता था।

अभिजीत ने एक और बात पर गौर किया, अधिनियां का ध्यान उस ओर गया होगा। हो सकता है कि उस्ताद जी का आँख भी भाँप गयी हो। तबले की संगत में जब भी कभी कोई त्रुटि होती, बस्ती के लोगों में बैठा एक व्यक्ति बेहाल हो उठता था। कभी झुंझलाकर, कभी निराश होकर बुरी तरह सिर धुनने लगता था। उसकी आँखों और चेहरे पर व्यक्त भावों से ऐसा लगता था कि उसका दिल कचोट उठा हो, बीच-बीच में, दबे स्वर में 'ऊँह, ईश्श' भी वह कर उठता था।

इस बार तबलची से कोई ऐसी भूल हुई कि उस्ताद जी सहसा रुक गये। तान पूरे के तारों पर से उँगलियाँ हटा लीं। सरगिया अपनी छड़ी रोक कर तबलची की ओर

होंठ बिचका कर घूरने लगा। उस आदमी ने एक अजब स्थिति पैदा कर दी। टूटी प्रत्यंचा से छिटके तीर की तरह छिटक कर हाथ उठा कर जोर से कह उठा; "उठ जाओ, हट जाओ·····।"

हॉल में जैसे अचानक एक बम्-विस्फोट हुआ हो। सभी की चकित आँखें उसकी ओर टँग गयीं। वह लेकिन तत्क्षण गुम हो गया जैसे धरती फट जाये और वह उसमें समा जाये। वह यह क्या कर बैठा! कुछ पल के लिए सचमुच वह ज्ञान खो बैठा था।

महफ़िल में सन्नाटा छा गया था। गाने की ओर लोगों का मन-ध्यान कम था। इधर-उधर कुछ लोग फुसुर-फुसुर बतिया रहे थे। वे सब के सब अचानक शान्त हो गये। जैसे साँस रोके इस प्रतीक्षा में बैठे थे—अब क्या होगा?

किसी के कुछ कहने के पहले ही सदर के नायब सामने आये। सम्मानित अतिथियों की अभ्यर्थना, महफिल की मर्यादा और संचालन का जिम्मा उन्हीं पर था। इसलिए वे ड्योढ़ी पर खड़े थे। वहाँ से वे धीरे-धीरे चल कर बस्ती के लोग जहाँ बैठे थे, वहाँ आ गये। चुटकी के इशारे से उस आदमी को बुलाया, "ओ भाई, इधर-इधर आना।"

वह घबराहट में उठ रहा था कि बगल में बैठा एक नौजवान उसे रोक कर खुद खड़ा हो गया। हाथ जोड़ कर उस्ताद जी से उसने कहा, "हम उसकी ओर से आप से माफी माँगते हैं। आप समझ गये होंगे कि वह काहे गरमा गया। वह एक बढ़िया तबलची है।"

नायब नौजवान से खुश नहीं थे। खुश रहने की बात भी नहीं थी। यह शंभू था, बस्ती का नेता। यही सब खुराफात की जड़ भी था, यह वे अच्छी तरह जानते थे। यहाँ इस तरह माफी माँगना उसकी नेतागिरी ही थी। वे उसमें इस काम को बर्दाश्त नहीं कर सके। रुखाई के साथ बोले, "तुम्हें किसने टाँग अड़ाने को कहा जी!"

"जी, हमने आप से तो कुछ कहा नहीं।" बिना किसी ओर देखे ही शंभू ने फौरन उत्तर दिया। 'आपसे' शब्द के ऊपर कुछ इस प्रकार जोर दिया गया था कि सिर्फ उपेक्षा नायब की ही नहीं की गयी थी बल्कि मंसा औरों की भी उपेक्षा करने की थी। यानी भाव कुछ इस प्रकार व्यक्त हुआ कि 'आप कौन हैं साहब? हम तो उस्ताद जी से बात कर रहे हैं।'

यह कहना पर्याप्त है कि बंद्योपाध्याय खानदान के सदर नायब यह सुनने के अभ्यस्त नहीं थे। खास कर आज के इस आयोजन के नियोजक वे और बहूरानी ही थीं और प्रतिनिधि के रूप में उन्होंने ही सभी को न्यौता दिया था, सिर्फ इन लोगों को छोड़कर। उनमें से ही एक के द्वारा जो कुछ हुआ, वह बुरा हुआ। इसे गले के नीचे उतारना जितना मुश्किल था वैसे ही कुछ ऐसा किया भी नहीं जा सकता था जिससे कि महफ़िल में और गड़बड़ी मचे। फिर भी वे कुछ कड़ाई के साथ कहने जा रहे थे कि

उन्होंने देखा, नये मालिक उठ खड़े हुए हैं और वे इधर ही बढ़े आ रहे हैं। अतः वे कहते-कहते रुक गये।

अभिजीत के वहाँ पहुँचने के पहले ही पीछे से उस्ताद जी की आवाज आई, "उसे यहाँ बुला लीजिये।"

उसे यानी शम्भू को। मगर वह अभिजीत की ओर देख रहा था। जैसे कुछ और करने के लिए वह अन्दर ही अन्दर तैयार हो रहा हो। उस्ताद जी की बात उसे सुनाई नहीं पड़ी। उस ओर उसका ध्यान खींचा बगल के एक लड़के ने, "तुम्हें कहा जा रहा है शभू भाई!"

"हमका ?"

"हाँ।"

"कउन ?"

लड़के ने उस्ताद जी ओर उँगली दिखाया। शभू उठ खड़ा हुआ। फिर झुक कर दोनों हाथ फैला भीड़ मे रास्ता बनाता हुआ जैसे ही चम्पत होने वाला था कि फिर उस्ताद जी ने कहा, "उसे मेरे पास भेजिए न।"

"जाओ न नवीन कक्का।" उस आदमी को अचा कर देखते हुए शभू ने कहा।

"हम ?"

"हाँ, तुमको बुला रहे हैं न उस्ताद जी।'

नवीन इतने पर भी अक-बक था। भेपा-भेपा सा इधर-उधर देखता हुआ यो चला जैसे अब वह किसी भयानक सकट मे पड़ने ही वाला है।

अभिजीत अपनी जगह लौट गया था। उसी के सामने के गुजरना था, वहाँ नवीन ने रुक कर, प्रायः धरती पर झुक कर नमन किया। इसके बाद आगे बढ़ कर उस्ताद जी के सामने भी अभिनस्त होकर द्विविधाग्रस्त-सा हाथ जोड़ कर खड़ा हुआ।

"उन्होंने मुस्कराते हुए बाये तबले की ओर इशारा करके कहा, "हो जाये एक हाथ ?"

नवीन ने कुछ कहा नही सिर्फ उसकी जीभ बाहर निकल आयी और उस पर दाँत गड़ा कर बारबार गर्दन हिलाने लगा।

"क्यो, हर्ज क्या है ?',

"आपसे झूठ कुछ नही कहेगे। कभी-कभी जरामन बजाते हैं—तो ·· मगर आप के साथ ! अरे बाप रे !"

"ठीक है, आओ बैठो, जो होगा देखा जायेगा।"

नवीन ने पल भर मे क्या सोचा पता नही, मगर उसने गभीरतापूर्वक उस्ताद जी का चरण स्पर्श किया फिर पैरो पर गिर गया। उन्होंने उसे पकड़ कर उठाते हुए कहा, "ठीक हैं, ठीक है।"

तबलची पहले ही एक किनारे सरक गया था। नवीन ने सबसे पहले उसकी ओर मुखातिब हो माफी माँगते हुए कहा, "भइया, कुछ ख्याल न करना।"

वह तबलची संभवतः इसके लिए तैयार नहीं था। घबराहट में कुछ बुदबुदाया पर क्या कहा किसी की समझ में नहीं आया।

तबलची की जगह बैठते ही नवीन ने दोनों तबले को कई बार हाथों से छू-छू कर प्रणाम किया फिर आँखें मूँद कर उसने अपने इष्टदेवता को प्रणाम किया। जब उसने आँखें खोलीं तो उसके चेहरे पर कुछ देर पहले वाली कुठा का भाव गायब था। उसकी जगह आत्मबल की चमक व्याप्त थी।

पहले कई दफा हथौड़ी ठोंकने की बारी थी। यह शेष होते ही जब अभ्यस्त हाथों का पहला हाथ तबले पर पड़ा और उनमें से एक परिचित झंकार निकली, कि उस्ताद जी अघाये से उसे देखने लगे। उस दृष्टि को प्रसाद मान कर नवीन ने सिर झुकाकर अंगीकार किया।

उधर सारंगी के तार पर भी छड़ी पड़ी। एक बाजे का दूसरे ने साथ दिया। बजाने वालों में भी इशारे में सहमति का सम्भाषण हुआ। आपस में सहयोग की स्वीकृति—जिसका अर्थ था, हम सहयोगी हैं, हम दोनों का जो काम है, उसे ही कहा जाता है 'संगत'। मतलब 'संगति' या मेल में ही निहित है हमारा सम्पर्क। जिनके दोनों ओर हम बैठे हैं, जो हमारे मध्य-बिन्दु हैं, उन्हीं का अनुसरण अपने-अपने पथ पर हम करेंगे। प्रतिद्वंदी नहीं, सहयोगी हैं।

इतने बड़े उस्ताद के खास संगतिया से भी नवीन को भय था। पर उसकी दृष्टि में उसे जो आश्वासन की झलक मिली, उससे उसे बल मिला। अपने आप पर भी विश्वास जमा।

उस्ताद जी ने भजन अलापा। मीरा का भजन। जिस भाषा में मीरा की रचना थी, उस भाषा का ज्ञान यहाँ के लोगों को नहीं था। उसका व्याकरण वे नहीं जानते थे। परन्तु संगीत का व्याकरण अलग होता है, उसकी अपनी भाषा होती है, जिसे समझने के लिये बुद्धि या शिक्षा की आवश्यकता नहीं होती। आवश्यक होता है सिर्फ रसीला मन, शायद हर गान ऐसा नहीं होता। गाना मात्र ही संगीत या 'म्यूजिक' नहीं होता। मगर मीरा का भजन अवश्य उसी स्तर का गाना है। उसके पदों का परिचय हो या नहीं लेकिन उसका भाव श्रोता अनायास ग्रहण कर सकेंगे अगर उसे अन्तर से सही ढंग से उतार लिया जाये। यह काम गायकों का है। गायक अकेला नहीं है। सुर उसका वाहन है। फिर क्या हर गायक के लिये यह सम्भव है? सभी के कण्ठ में क्या वह जादू होता है? यह विशेष मंत्र क्या सर्व सिद्ध साधित है?

ऐसा ही अगर होता तो दुनिया में 'प्रतिभा' का कोई अस्तित्व ही नहीं होता।

सभी सब नहीं कर पाते। कोई-कोई एक विशेष क्षमता लेकर जनमते हैं। कोई उत्स उसका जब नहीं मिलता तब कहा जाता है—दैवी शक्ति है। हो सकता है, यही हो। न भी हो। यही सृष्टि का रहस्य है, जिसका आवरण आज भी उन्मोचित नहीं हुआ। कौन जाने कभी होगा भी या नहीं।

प्रतिभा ईश्वर प्रदत्त होते हुए भी उसके प्रस्फुटन का जिम्मेदार मनुष्य ही है। ईश्वर जो कुछ देते हैं, वह है मात्र बीज या बहुत हुआ तो अंकुर, उसे पत्र-पुष्प के रूप में सुशोभित करने का काम मनुष्य का है।

सिर्फ विधाता ने ही तो इस विश्व की सृष्टि नहीं की, उसकी पर्त दर पर्त में मनुष्य के कार्य-चिह्न अंकित हैं।

उस्ताद जी में सम्भवतः इन दोनों का वास्तविक मेल था। ईश्वर प्रदत्त कंठ से युक्त थी उनकी जीवन व्यापी साधना। बहुत दिनों पश्चात् आज इस साँझ में जैसे उन्होंने सब निःशेष कर दिया। किसके आगे, कौन है उनके श्रोता, यह सब भूलकर। यदि भूलते नहीं तो यह सम्भव भी नहीं होता। वह रुकावट डालता, मर्यादा-बोध कन्धे पर सवार हो जाता। पर जो उनके सामने बैठे हैं, उनमें से बहुत से लोग उनके इतने महत्त दान के योग्य पात्र नहीं है, इसे वे बिल्कुल ही भूल गये थे। गाने में तन्मय थे। इससे भी बड़ी बात यह थी कि अपने सुर धार में उन्होंने सिर्फ शिक्षा और साधना का उपयोग ही नहीं किया था बल्कि उसमें उन्होंने अपना हृदय उँडेल दिया था। गाने के साथ एकात्म हो गये थे।

हो सकता है, इस विशेष गाने की भाषा, स्वर, अन्तर्निहित आवेदन सहायक सिद्ध हुए हों। मीरा जब अपने गिरधर गोपाल को गाना सुनाती थीं, उस समय वह यह भूल जाती थी कि वह राजरानी है, वह भूल जाती अपना अभिजात्य, गौरव, मर्यादा। एक अति साधारण रमणी के रूप में अपने पत्थर के श्रोता के सम्मुख समर्पित हो जाती थी, वैसे ही उस्ताद जी भी इस क्षण अपने जीवन भर की अर्जित की हुई विद्या, यश, मान-सम्मान, स्वातन्त्र्य-बोध, सब कुछ भूल कर एक साधारण गायक की तरह अपने को शिक्षा-दीक्षा हीन अनाड़ी श्रोताओं में विलीन कर चुके थे।

उसका परिणाम हाथों-हाथ मिला। जिनने अब तक उन्हें अलग कर रखा था, झिझक और कुछ भय के अलावा और कुछ नहीं दिया था, वे जैसे अव्यक्त आकर्षण से और निकट आ गये। जिन आँखों में एक गूँगी निर्विकार उदासीनता के अलावा और कुछ नहीं था, वहाँ दीखा उत्सुकता का प्रकाश। उसमें प्रस्फुटित हुआ पाने का आनन्द। श्रोताओं को लगा कि वे कुछ पा रहे हैं, कहीं कुछ जाग रहा है। यह आदमी जो गा रहा है वह सिर्फ उस्ताद नहीं हैं, उनमें अपने आत्मीय का दर्शन हो रहा है। वे हमारे जाने-पहचाने हैं, बहुत पास के कोई।

गाना जब खत्म हुआ तब महफिल की समाँ ही बदली हुई थी। गवैये के साथ

श्रोता एकात्म हो चुके थे, सूक्ष्म सूत्र जुड़ चुका था। सभी उल्लसित-उत्तेजित थे। कोई-कोई मुग्ध, किसी की दृष्टि भावभीनीं थी।

वह मिस्त्री जो ताला तोड़ने आया था, और जिसने महफिल में आने की इजाजत चाही थी, वह तो बीच-बीच में तड़प-तड़प उठा था। वह अब अपने को रोक नहीं पाया। दौड़कर उसने उस्ताद जी के पैरों पर सिर पटक दिया। इसके बाद गरदन उठा, हाथ फैला कर कह उठा, "चरण धूल दीजिये प्रभु! देश छोड़ने के बाद ऐसा कभी नहीं सुना था भगवान्!"

यह कहते हुए उसकी कोटर में धँसी दोनों आँखों में आँसू डबडबा आये। लगा उसे अचानक अपने देश की याद हो आयी। बहुत दिन हुए जिसे छोड़ आया है और शायद अब कभी वहाँ जा न पाये। ऐसी ही किसी मधुर-करुण अनुभूति का स्पर्श उसे छूने लगा।

उस्ताद जी ने रोका। कितने लोग उनके चरण रज लेते रहते हैं। उन जैसे प्रसिद्ध कुशल, गुणी व्यक्ति का प्राप्य सम्मान यही तो है। इसी दृष्टि से इसे देखते भी हैं। अभ्यास के वशीभूत होकर मन को उद्वेलित करने जैसा उन्हें इसमें कुछ नहीं मिलता। लेकिन इस मूर्ख, दरिद्र गँवार आदमी की सरल उमंग और आत्मीय स्पर्श से उन्हें एक ऐसा सुख मिला, जो समझदार श्रोताओं की फर्जी वाहवाही में नहीं मिलता।

मिस्त्री के कन्धे पर हाथ रख कर हँसते हुए वे बोले, "तुम लोगों को अच्छा लगा।"

"ई भी कोई कहे की बात है?"

अब उस्ताद जी अपने अचानक मिले तबलची की ओर मुड़े। स्नेह से पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है?"

"जी····जी—नवीनदास।"

"हाथ बहुत मीठा है। अच्छा बजाते हो।"

"काहे नहीं!" मिस्त्री ने गर्व के साथ कहा, हलवाई का पूत है न। चीनी का रस घोंटते-घोंटते हाथ भी मिठाई हो गया है।"····यह कहकर अपने मजाक से वह आप ही खिलखिला कर हँस उठा। बस्ती के लोगों ने भी इस हँसी में साथ दिया। खास कर जवान और लड़कों के दल ने। सभ्य श्रोताओं के होंठों पर भी हलकी हँसी झलकी।

सामने की जगह खाली होने लगी थी। मेहमान यहाँ-वहाँ से एक-दो उठ-उठ कर जाने लगे थे। कोई दूर से और कोई पास आकर खुशी-खुशी विदा ले रहे थे। कोई-कोई दो कदम आगे बढ़कर उस्ताद जी को धन्यवाद दे-देकर कृतज्ञता ज्ञापन कर रहे थे।

बस्ती वालों की भीड़ अभी भी लगी थी। वे गाना सुनने आये थे। अन्त तक सुनेंगे। बीच में ही उठकर चले आने में जो विशिष्ट होने की गाँठ होती है, वह उनमें नहीं है। या शायद हो—(जो लोग नितान्त साधारण होते हैं वे ही आखिर तक ऐसे में डटे रहते हैं)—पर विशिष्ट बनने की लालसा ऐसों में नहीं होती। वे असाधारण हैं ऐसा सोचकर वे यहाँ आये भी नहीं। यानी बैठे रहे। कार्यक्रम के बीच में बातचीत करना कोई बुराई नहीं है। दबे स्वर में वह भी चल रहा था, और हॉल में उस ओर गप्पें हो रही थीं। सहसा एक जवान छोकरा उठ खड़ा हुआ। उसके हाथ के इशारे से गप्पें रुकते ही उस्ताद जी के अभिप्राय से उसने कहा, "अब एक चलताऊ हो गुरुजी!"

सामने की पंक्ति में कई बूढ़-पुरनिया बैठे थे। इस महफिल के पुराने श्रोता, उस्ताद जी के खास भक्त और ऊँचे स्तर के संगीत के समझदार लोग। वे चौंक उठे। अभिजीत को भी कम अचरज नहीं हुआ। ठीक उसकी बगल में जो बैठे थे उन्होंने उसके कानों में झुँझलाकर धीरे से कहा, "देख लीजिये इनकी बेहूदगी।"

अभिजीत के कुछ कहने के पूर्व ही उस ओर बैठे एक सज्जन ने कड़ी आवाज में धमकाते हुए कहा, "तुम लोगों ने क्या समझ रखा है? किससे क्या कह रहे हो, कुछ पता है?"

जवान छोकरा कुछ हतप्रभ हुआ, पर बोला, "काहे, का ऊ चलताऊ नहीं जानते?"

"नहीं भाई!" उस्ताद जी ने धीर-गम्भीर शान्त स्वर में उत्तर दिया, "हम पुराने जमाने के लोग हैं। वह सब सीख कहाँ सके? अच्छा हो आधुनिक या चलताऊ तुम लोगों में से कोई गाये।" इतना कह कर वे धीरे-धीरे उठ खड़े हुए और बगल के दरवाजे की ओर बढ़े।

सामने जो लोग बैठे थे, वे भी उठ खड़े हुए। अभिजीत ने भी उस्ताद जी का अनुसरण किया। साथ ही बाढ़ के बहाव की तरह हड़बड़ा कर बस्ती के लोग टूट पड़े और देखते ही देखते सामने की खाली हुई जगह दखल कर बैठे।

बहूरानी महफिल में नहीं आयी थीं। आने का मन नहीं था, यह बात नहीं, बहुत दिनों के बाद उस्ताद जी गाने आये थे, खास कर उन्हीं के अनुरोध आग्रह पर। लेकिन वह बैठतीं कहाँ? पहले जब भी महफिल होती थी तो महिलाओं के लिये गवैये की दाहिनी ओर जो जगह थी वहाँ चिक का पर्दा पड़ जाता था। सिर्फ परिवार की महिलाएँ या स्वजन-आत्मीय ही नहीं, बाहर की आमंत्रित स्त्रियाँ भी होतीं और गाँव की बिन बुलाए जो स्त्रियाँ आ जातीं उनके लिये भी स्थान वहाँ होता। पुरुषों के लिये जो व्यवस्था थी, उनके बीच भी वैसा ही नियम था यानी भिन्न-भिन्न स्तर की महिलाओं के लिये विभिन्न पाँतियाँ बैठी थीं।

आज की महफिल में चिक नहीं पड़ी थी। नायब जी ने कहा था जरूर, खास

कर बहूरानी को दृष्टि में रखकर ही, लेकिन महामाया ने यह 'हंगामा' करने नहीं दिया। भीतर ही भीतर उनका यह ख्याल रहा हो कि अब चिक का जमाना लद गया। यहाँ तो वे अकेली रह गयीं हैं। आयोजन भी उतना विशाल नहीं है। अपनों को बुलाया नहीं गया। गाँव की औरतों के लिये भी इस परिवार की हँसी-खुशी में अब उतनी दिलचस्पी नहीं रही। आमन्त्रित सरकारी अफसरों के संग उनकी पत्नियाँ, बहिनें कुछ आयेंगीं। वे पुरुषों में ही बैठेंगी। बहुत हुआ तो बिना किसी दायरे के थोड़ा फासला होगा। वे इस जमाने की महिलाएँ हैं। दरवाजे-खिड़कियों की सजावट के सिवा परदे का व्यवहार जानती नहीं। चिक की ओट में लुका-छिपा रहना उनके आत्मसम्मान को ठेस पहुँचाना है।

महामाया ने अवश्य नायब से यह सब कुछ नहीं कहा। अपनी असुविधा ही उन्हें बता दी थी, "महिलाओं को अलग बैठाने में देख-रेख कौन करेगा? मैं तो हर समय इधर ही उलझी रहूँगीं।"

इधर का मतलब बहुत कुछ था—सारा मेहमानों के नाश्ते का इन्तजाम करना, उस्ताद जी के संग आये कई लोगों के भोजन की व्यवस्था, सब तो उन्हें ही करना था। मन ही मन सोचे बैठी थीं, यह सब ठीक-ठाक करके यदि मौका मिला तो हॉल के बगल के कमरे में जा बैठेंगी। बीच वाले दरवाजे के पास ही तो उस्ताद जी का आसन था। दरवाजा जरा फाँक कर लेने पर ही उस्ताद जी को देखा जा सकता है, गाना भी सुना जा सकता है। श्रोताओं की निगाह वहाँ पहुँच भी नहीं सकती।

अचानक महामाया ने किसी से सुना कि उस्ताद जी उठ गये हैं। उन्हें अचरज हुआ। इतनी जल्दी! इस घर में बहुत महफिल होते उन्होंने देखा है। चिन्ता में पड़ गयीं। कहीं उस्ताद जी की तबीयत तो अचानक खराब नहीं हो गयी! बूढ़े हो गये हैं, शरीर भी वैसा नहीं रहा।

अन्दर महल से फौरन बाहर आयीं। बिचले-महल की ड्योढ़ी पर नायब मिले। उनका चेहरा गम्भीर था। उन्हें देखते ही वे समझ गयीं, जरूर गड़बड़ी हुई है। क्या हुआ है—यह जानने को ठहर गयीं। पता नहीं क्या सुनने को मिले।

नायब ने अजीब दृष्टि से महामाया की ओर देखा। इसके बाद दाहिने हाथ की हथेली उलट कर उन्होंने क्षीण स्वर में कहा, "हो गया।" जरा हँसने की कोशिश की। ऐसी हँसी किसी विपदा में ही आदमी हँसता है।

"क्या हुआ नायब जी?" कुछ और पास आकर बहूरानी ने डरते-डरते पूछा।

"वही जो होना था। एक दिन मैंने कहा था न, ये जितना जो कुछ ले चुके हैं, उतने से ही शान्त नहीं होने वाले हैं। उनका असली मकसद है हमारी इज्जत पर कब्जा करना। नम्रता की खानी पर भी, देख लेना, एक दिन जबरदस्ती का झंडा फहराने लगेगा। वही हुआ। इसी हॉल से उसकी शुरुआत हो गयी। दुःख की बात

तो यह है कि हमलोगो ने ही इसका अवसर इन्हे दिया। इन्हे बुला लाये—आ बैल मार।"

"मैं कुछ समझी नही!"

बहूरानी की बातो मे व्याकुलता थी। नायब जी ने उस ओर ध्यान नही दिया। वे उस वक्त स्वयं बडबडा रहे थे, "सब बिला जायेगा। यह पता है और यह भी पता है कि उसके पहले हम भी बिला जायेगे। और अपनी आँखों के आगे ही..."

वाक्य अधूरा रहा। अभिजीत वहाँ आ गया था। उसे देख कर नायब चुप हो गये और वहाँ से जाने के लिये पैर बढाया ही था कि अभिजीत ने उन्हे रोक कर कहा, "काका, मैं आपको ही ढूँढ रहा था। बाहर से जो लोग आये हैं, कोई चले न जायें। मैं तो सभी को पहचानता भी नही।"

"ठीक है। मैं देखता हूँ।"

नायब चले गये। अभिजीत बहूरानी की ओर मुड़कर बोला, "तुम्हारा इधर सब ठीक है न? मतलब नाश्ता-भोजन।"

महमाया ने इस सवाल का उत्तर न देकर बीच मे ही एक और सवाल किया, "वहाँ क्या कुछ गडबडी हुई है लाला?"

"गडबडी? नही तो!"

"इतनी जल्दी महफिल उठ गयी?"

"महफिल उठी नही, उस्तादजी उठ गये। अब तुम्हारी इस बस्ती के लोग आपस मे गा-बजा रहे हैं।"

"बस्ती के लोग?" बहूरानी के ललाट पर आडी-टेढी रेखाएँ उभर आयी, "शायद इसी लिये उस्तादजी उठ गये?"

"नही, वे अपनी मर्जी से ही उठे। उनके बारे मे जैसा हम समझते हैं, वे वैसे नही हैं। कहाँ मुडना होता है, वे जानते हैं। खैर, मैं चला, तुम्हारे गेस्ट को संभालूं। इन्तजाम होते ही खबर भिजवा देना।'

"सब हुआ ही है। देर नही है।' अचानक जैसे जबरन सभी चिन्ताएँ उतार फेंक अपने कर्तव्य की ओर महामाया लौट आयी, 'प्लेटे सजाई जा रही हैं। अब थाम बनाने को कहती हूँ?"

तेजी से अन्दर महल मे जाते हुए वे ठमक कर खडी हुईं। हाल से शोर का एक झोंका आया। उधर मुँह मोड कर वे कई क्षण तकती रही। इसके बाद तेजी से आगे बढ गयी।

उनकी आँखो मे जो झुँझलाहट थी अभिजीत से वह छिपी नही रही। बाहर महल मे जाते हुए उसके होठो पर हँसी की पतली सी रेख उभर आयी। इस हाल मे मचने वाला शोर इस महल के लिये कोई नयी बात नही थी। बहुत बरस पहले भी सुना

जाता रहा है। इससे भी अधिक उदंड तथा पागलपन से वह भरा होता था। फिर भी उसे ये सहते थे, मान लेते थे। आज सह नहीं पाते। बहुत बुरा लग रहा था। उस समय जो शोर मचाते थे और आज जो शोर मचा रहे हैं उनमें दूरियाँ काफी थीं। इसीलिये मन को बुरा लग रहा था।

इन कई वर्षों में समय बड़ी तेजी से आगे बढ़ा है। बहूरानी और नायबजी ही उसके साथ कदम नहीं मिला सके हैं।

४

अग्निजीत को जब काशी भेजा गया था, उस समय तक गाँव के स्कूल में अभी दो वर्ष की पढ़ाई बाकी थी। हेड मास्टर उसे पढ़ाते नहीं थे। फिर भी वह बंद्योपाध्याय परिवार का लड़का है यह वह जानते थे। स्कूल और स्कूल के बाहर भी उससे वे संपर्क रखते थे। कारण, उसके बात व्यवहार से ऐसा लगता ही नहीं था कि वह जमींदार घराने का लड़का है। उस परिवार से पहले जो आते रहे हैं, उनमें यह भावना साफ प्रकट होती थी। दुर्गा मोहन बाबू बहुत दिनों से इस स्कूल से जुड़े हैं। अपनी जवानी में एसिस्टेंट टीचर हो कर आये थे, धीरे-धीरे चढ़े-बढ़े। इसके लिये उन्होंने किसी का दरवाजा कभी नहीं खटखटाया।

अग्नि के लिये दुर्गा मोहन बाबू के मन में एक स्नेहपूर्ण अव्यक्त आकर्षण था। इसके साथ एक और चीज जुड़ी थी, जिसे कहा जाता है संवेदना। इस शान्त, नाजुक, भोले बच्चे की आँखों में झाँकने पर उन्हें सदा ऐसा लगा है कि इसके मन में कोई दुःख है, जिसे वे उसके होकर महसूस करते थे। कारण से तो वे अनजान थे। पर वे यह जान चुके थे कि अग्नि जिस घराने का लड़का है, जिस वातावरण में पला है उसमें वह अपने को खपा नहीं पा रहा है। बंद्योपाध्याय परिवार के विशाल महल में वह नितांत अकेला है। उसके बाहर भी जो छोटी-सी दुनिया है, उसमें भी वह अपने को खपा नहीं पाता। दोनों के बीच में इस महल की ऊँची दीवाल खड़ी है। बाधा उसकी अपनी ओर से जितनी प्रबल है, उससे कहीं अधिक बाहर का बन्धन है। वह किसका लड़का है, उसे भूलना चाह कर भी, गाँव उसे भूलने नहीं देता।

जिस दिन यह सुना कि अग्नि यहाँ से जा रहा है, अब से वह अपनी काशी-निवासिनी दादी के यहाँ रह कर पढ़ेगा, ऐसी ही उसकी इच्छा है (प्रचार ऐसा ही किया गया था), दुर्गा मोहन एक ओर जहाँ उसकी अनुपस्थिति को हृदय से अनुभव

कर रहे थे, वहीं उन्हे खुशी भी हुई। अपने घर में ही पराये होकर रहने से कहीं अच्छा है परदेश मे जीवन बिताना। अपनो से अलग होने मे जो एक टीस है, खास कर इतनी कच्ची उम्र के लड़के के लिये, उससे कही अधिक सुख है— मुक्ति। यहाँ रहने पर उसका मन गमले के पौधे की भाँति दिन-दिन सूखता जाता, अब वह खुली आबोहवा पाकर सरसब्ज बना रहेगा।

अभिजीत की मास्टर साहब से भेंट कभी कभार ही होती थी। बातें भी जो कुछ होती बहुत मामूली। फिर भी किन्ही अज्ञात कारणो से वह उन्हे अपने से ही लगते थे। स्वरूपकाठी जिस दिन उसे छोड़ना पड़ा, उसके बाद से जीवन भर वह इस भागीरथी के तट पर त्याग आये जीवन को भूलने का ही यत्न करता रहा। पर भूल न सका। शायद भूल ही जाता यदि तीन-तीन लोगो का अदृश्य आकर्षण का जाला-जाला उसके मन के चारो ओर घिरा न होता। उसमे जो सबसे ज्यादा प्रबल था, बहुत पहले ही वह टूट चुका है। दूसरे के खिचाव की उपेक्षा नही कर पाया तभी तो उसे इतने दिनों बाद भी लौट कर आना पड़ा है। और तीसरे के प्रति मन ही मन अब तक वह संदेह शील रहा है। पता नही लौटने पर क्या से क्या पाये? मनोबल दृढ होने पर भी संसार की माटी किसी को सदा पकड़े नही रहती। लौटने पर उसने सुना, उसकी आशंका निर्मूल है। दुर्गा मोहन बाबू अभी भी हैं। सिर्फ 'हैं' ही नही। वे आज भी मन से हरे और तन से भरे हैं।

सबे काम के दिन उन्होंने जिस माटी मे बिताया है, रिटायर होने पर भी सम्भवतः उसकी माया से वे मुक्त नही हो पाये थे। स्कूल से कुछ दूर गंगा के उतार पर यानी सराई जहाँ से शुरू हुई है, वही एक घर बना लिया है। उनके मिलने-जुलने वाले बहुत नही हैं, इसकी जरूरत भी उन्हे नही थी। पत्नी बहुत दिन हुए परलोक सिधार गयीं। लड़के कोई कलकत्ते मे कोई यहीं, अपनी गृहस्थी मे लगे हैं। एक लड़की है, संतान हीना विधवा। वही बाप के साथ रहती है। यानी बूढ़ा बेसहाय बाप उसी की शरण में पड़ा है। दुर्गा मोहन ऐसा ही सोचते और लोगो से कहते भी यही थे। उनका विश्वास है कि भगवान किसी को एकदम से वंचित नही करते।

महफिल मे वे आ नही सके थे। संगीत से दिलचस्पी जरूर है। मगर एक ठौ मे बहुत देर तक बैठ कर सुनने का शरीर नही रहा अब। बीच मे उठना उनके मतानुसार गवैये का अपमान करना है। इसलिये वहाँ नही जाना ही तै कर लिया था, जिसकी खबर उन्होंने एक पत्र लिखकर अभिजीत को दे दी थी। इसके पहले ही अभिजीत उनसे मिल आया था।

महफिल के कुछ रोज बाद एक दिन वह सवेरे-सवेरे जा पहुँचा था। दुर्गा बाबू कालेज मे साहित्य के विद्यार्थी थे, स्कूल मे भी वे अंग्रेजी ही पढ़ाते थे, मगर अवकाश के दिन अब वे दर्शनशास्त्र के पठन-पाठन मे बिता रहे थे। आज-कल वे 'सांख्य' पढ़

रहे थे। इससे उन्हें बहुत आनन्द मिल रहा हो, ऐसी बात नहीं थी। अभिजीत को देख कर मन ही मन प्रसन्न हो उठे। पुस्तक बन्द कर के मुस्कुराते हुए बोले, "आओ, अभि!"

अभि की इच्छा हो रही थी कि मास्टर साहब के पैर छू कर प्रणाम करे, पर वे ब्राह्मण नहीं थे तो कैसे एक ब्राह्मण-पुत्र से पैर छुआते। नमस्कार बहुत मामूली शिष्टाचार लगता है। इसलिये चुप चाप उनके कैम्पचेयर की बगल में जा बैठा। दोनों पक्षों के कुशल क्षेम के बाद उसने कहा, "बहुत आराम से था, मास्टर साहब। बहूरानी का अनुरोध अस्वीकार नहीं सका सो आना पड़ा। सोचा, चलो अब तो जमींदारी का कोई झमेला नही रहा, कुछ रोज आराम से बिता लूंगा।"

दुर्गा मोहन बोले, "जमींदारी चली गयी तो उसका झमेला भी खत्म हो गया, यह कैसे मान लिया?"

"देख यही रहा हूं। झमेला और भी बढ़ गया है। देखिए न, एक नयी समस्या में मैं पड़ गया।" यह कह कर उसने अपनी जेब से एक मुड़ा हुआ कागज निकाला।

दुर्गा मोहन ने कहा, "क्या है यह?"

"आप इसे खुद पढ़ देखिये न, और आप बताइये, इस मामले में क्या किया जाये?"

"मुझे बताना होगा?" हाथ बढ़ा कर कागज लेकर खोलते हुए दुर्गा मोहन ने कहा, "मैं तो जीवन भर कैसे इम्तिहान पास किया जा सकता है यही समझता-समझाता रहा। अब तो उससे भी मुक्त कर दिया गया हूं। यों अब उसकी जरूरत भी नहीं रही।"

"यह भी तो एक इम्तिहान ही है मास्टर साहब, स्कूल-कालेज के इम्तिहान से कहीं ज्यादा जटिल।"

'यों तो हम सभी जिन्दगी भर इम्तिहान ही देते रहते हैं। उसका क्या समय-गया असमय, न कोई नोटिस। और विषय भी पहले से जाना नहीं जा सकता। मगर इस इम्तिहान में बैठना ही पड़ता है। पेट में दर्द है, मैं नहीं बैठूंगा, यह नहीं चलेगा।" दुर्गा मोहन कहते रहे और हाथ का कागज पढ़ते रहे।

यह सदर-नायब का पत्र था, जो अभिजीत को लिखा गया था। लेकिन उस अभिजीत को नहीं जो उनका स्नेहभाजन था। इस परिवार से वर्षों से जुड़े होने के नाते जिसे वे 'तुम' कह कर पुकारते थे। यह पत्र उन्होंने उस अभिजीत को लिखा, जो आज उनका मालिक है—अन्नदाता। जमींदार-वंश का एकलौता उत्तराधिकारी।

बातें भी उसमें इसी के अनुसार लिखी हुई थीं।

"महामान्य,

सम्मान इस दीन की विनती है कि बहुत लंबे अर्से से मैं आपकी गद्दी में सदर

"यह सब जिम्मेदारी लेने को मैं नहीं आया था मास्टर साहब। इसके लिये मैं तैयार भी नहीं हूँ। अगर ऐसा ही होना तो जिस दिन पिता जी की मौत की खबर मिली और जब कि भइया उनके पहले ही चल बसे, उसी समय आ जाता। मैं आया, सिर्फ बहूरानी की वजह से। उनका पत्र पढ़ कर मन में आया, जरा देख आऊँ। सिर्फ कुछ दिनों के लिये चला आया।

"मगर उनका भी तो ख्याल रखना होगा। इतने बड़े महल में वे एकदम अकेली हैं। वे ही भला किसलिये ऐसे झमेले में पड़ें? एक सन्तान भी यदि होती, तो भी एक बात थी।"

अभिजीत चुप रहा। इसके आगे कुछ कहने को भी नहीं था। उसने खुद भी इस पर सोचा-विचारा है, खास कर यहाँ आने पर, जब उसने अपनी आँखों से देखा कि भाभी कितनी अकेली हैं, कितनी शून्य, तो दंग रह गया वह। कैसे, किस भरोसे बहूरानी जी रही हैं। जिन औरतों का मन कुछ है ही नहीं, सिर्फ चाभी वाले खिलौने की तरह चलती रहती हैं, जो दुनिया में एक मशीन की तरह सुबह से शाम तक जैसे एक कमरे में चलती-फिरतीं रहती हैं, उनकी बात अलग है। मगर महामाया उन औरतों में नहीं है। उसका मन है, उसमें अनुभूति है, तीव्र-तेज। सब कुछ उसे छूता है। वे सोचना जानती हैं, अपनी आँखों से जो देखा है और जो देख रही हैं, उसके बारे में वे सजग हैं। इसके अलावा भी जो इतने वर्ष, इतनी उलट-पलट शोक-ताप-संताप में भी खड़ी रही हैं, टूटी नहीं, भागी नहीं, इसके रूप में उनके चरित्र की दृढ़ता ही तो है। असाधारण मनोबल और सर्वोपरि है उनका कर्तव्य-बोध।

अभिजीत को खामोश देखकर दुर्गा मोहन ने उसकी चिन्ता भाँप ली और उसी पर बल दिया। बोले, "वे तो परिवार की बहू हैं, उम्र भी हुई, आधी उम्र पार कर चुकीं अब तो, उन्हें ही काशी चला जाना चाहिए था। पर वे गयी नहीं। सिर्फ कर्तव्य-बोध ने उन्हें रोक रखा है। जिस परिवार की वे पतोहू हैं, उसकी जिम्मेदारियाँ इनकार नहीं सकतीं, इसीलिये पड़ी हैं। पर इसकी भी तो कोई सीमा होनी चाहिए।"

अभिजीत ने इस प्रसंग को और आगे बढ़ने नहीं दिया। पत्र की ओर इशारा करके बोला, "इस विषय में क्या किया जाये?"

दुर्गा मोहन पुराने कागज पर एक बार और दृष्टि डाल कर बोले, "मेरा ख्याल है, यज्ञेश्वर जब जाना चाहते हैं तब उन्हें रोकना ठीक नहीं होगा। इस पत्र में एक बात मुझे बड़ी अच्छी लगी—उनकी सच्चाई, जिसे कहा जा सकता है—सिनसियरिटी ऑफ परपज। मन में कुछ बाहर कुछ, इसकी जगह सब कुछ साफ कह कर फुरसत चाहते हैं। यह बहुत ही रेकमेंडेबल है। कोई और होता तो असली कारण से हट कर कहता, "उम्र ढल गयी है, स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता, अब जाना चाहता हूँ। पर उसने ऐसा नहीं कहा। उन्हें जो असुविधा है, उसे खोलकर कह दिया है। इसके बाद उन्हें रोका

भी नहीं जा सकता। रोकने पर रुकेंगे भी नहीं।"

अभिजीत ने कहा, "वे अगर यही कहते कि वे जिस युग के आदमी हैं, वह युग अब नहीं रहा। जिस धारणा से वे एक समय से जमींदारी चलाते रहे उस धारणा को बदलना होगा, जो उनके लिये कठिन है, तो मेरे लिये भी उन्हें छोड़ना सहज होता। लेकिन उन्होंने ठीक ऐसा नहीं कहा। उनकी बातों से यह पता चलता है कि मुझसे उन्हें कोई शिकायत है। यही बात मुझे खटक रही है। इतने पुराने एवं विश्वस्त, योग्य कर्मचारी अन्त में मन में कुछ खोट लेकर जायें—"

बात पूरी न होने पर भी दुर्गा मोहन को समझने में कोई असुविधा नहीं हुई। बोले, "इस पंक्ति पर मैंने भी गौर किया है। जहाँ यह लिखा है—अपने किसी विश्वासी योग्य व्यक्ति को भार सौंप कर आप भी निश्चिन्त हो सकते हैं। इसे शिकायत न कह कर गर्व कह सकते हो। यह तो रहेगा ही। जिनके लिये सारा जीवन खपता-मरता रहा, उनमें अगर अण्डर-स्टैंडिंग की कमी हो, मत या विचारों में मेल न रहे, तो कुछ मन में लगता ही है। इसे इतना महत्व न दो। अगर उन्हें बुलाकर कहो, आपके ऊपर मुझे तनिक भी अविश्वास नहीं है, इसका कोई कारण भी नहीं है, उनके मन में जो संताप है वह साथ ही साथ मिट जायेगा। उन्हें मैं जानता हूँ, तुमसे अधिक दिनों से देखता आ रहा हूँ। जीवन में बहुत इधर-उधर किया है, लेकिन मन का सरल है।"

इतना पुराना, योग्य एवं परिश्रमी कर्मचारी दुःखी होकर जाये और कारण वह हो, यह सोच कर अभिजीत को परेशानी कम न थी। मास्टर साहब की बातों से उसे कुछ राहत तो मिली। इतनी देर से इस मामले को लेकर अन्दर ही अन्दर जो काँटा चुभ रहा था, उससे तनिक मुक्ति मिली।

यज्ञेश्वर सरकार खुद ही चले जा रहे हैं, यह ठीक ही है। वर्ना यह अप्रिय काम अभिजीत को ही करना पड़ता। इसके लिये वह अपना मन भी बना रहा था। सदर नायब के रूप में उनकी योग्यता पर कोई उँगली नहीं उठा सकता था। बंद्योपाध्याय परिवार उनसे जो सर्विस, जो अकथ सेवा-शुश्रुषा और परिश्रम लेता रहा है, इसकी भी कोई तुलना नहीं हो सकती। फिर भी उनके जाने की जरूरत आ पड़ी थी।

काम करने वालों के लिये एक निर्दिष्ट समय होता ही है, जिससे अधिक उसे घसीटना उचित नहीं होता। चाहे कितनी बड़ी प्रतिभा क्यों न हो, उसके विकास तथा पूर्णता की सीमा होती है, जहाँ उसे रुकना ही पड़ता है। आदमी जैसे अमर होकर नहीं जनमता, वैसे ही उसकी शक्ति और क्षमता भी अपरिसीम नहीं होती। निर्धारित लाइन पार करते ही उसका मूल्य गिर जाता है। ऐसे में भी अगर वह अपनी जगह से हटता नहीं, गद्दी से चिपका रहता है, तो वक्त ही उसे धक्के मारकर हटा देता है। इतिहास की भाषा में तब वह कहलाता है—अनार्की, सामंजस्यहीन।

सदर नायब यज्ञेश्वर सरकार भी, इसी प्रकार, अपना समय गुजार चुके थे।

उन्हें छोड़कर जाना पड़ रहा है यह उनका कोई दोष नहीं था। अयोग्यता भी नहीं। जाना होगा, यह समय की माँग थी, समय की स्वाभाविक गति का अलंघ्य दायरा। वे जिस परम्परा के धारक और वाहक थे, उसका ह्रास हो चुका है। उसे देश की सरकार ने अपने हाथों ले लिया। जमींदारी चली गयी है, उसके साथ उसका प्रताप भी चला गया है पर आँच अभी बाकी है। वह इनके मन में जमी है। उसमें शरणार्थियों ने आग में घी का काम किया! जमींदारी जाने के बाद भी जिस जमीन पर इनका अखण्ड और एक छत्र अधिकार था, उसी पर जोर-जबरदस्ती आ बैठे। पहले जैसा होता तो इस जोर-जुलुम का जवाब लाठी से दे दिया जाता, लेकिन इन लोगों को पता है कि अब लाठी का जोर नहीं रहा। तभी इतनी हिम्मत हुई। यह जैसे टूटे मनोबल वाले बंद्योपाध्यायों के खिलाफ एक उद्धत चैलेंज हो—ताकत हो तो आओ। हाँ जबरदस्ती है। 'जबर दखल' का अर्थ तो यही है। तुममें ताकत हो तो हमें बेदखल करो।

सदर नायब इस बस्ती के मामले को इसी दृष्टि से देखते रहे हैं, दूसरे रूप में देखने की दृष्टि उनकी नहीं थी। इसका एक दूसरा पहलू भी हो सकता है, यह वह सोच भी नहीं सकते थे। कौन हैं ये? क्यों ये टिड्डियों की तरह आये और उनकी जमीन पर छा गये? कौन हैं वह जिन्होंने इन्हें ऐसे जुल्म और अनधिकार की राह पर धकेल दिया? इन सारे सवालों की वे कल्पना भी नहीं कर सकते थे। यह सवाल उठाये तो ये फिजूल कहकर टाल देंगे।

मगर अभिजीत को मालूम है, यहाँ आते ही वह सोच चुका है। इन सवालों को अब टाला नहीं जा सकता। कानून अवश्य उसके नायब और मुनीम के पीछे आ खड़ा होगा। कानून का मतलब घटना से होता है। क्या हुआ? मामला क्या है? ह्वाट आर दी फैक्टस् ऑफ दी केस? बस इतना ही तो सवाल है। जवाब भी बहुत सहज है। बाहर के कुछ लोग आये और इतने बीघे जमीन पर जबरदस्ती दखल जमा बैठे। "किसकी जमीन है?", "हम लोगों की", आगे बढ़कर सदर नायब कहेंगे, "यह है उसका परिमाण।" यह कह वे दाखिल करेंगे लोहे के सन्दूक में सहेज कर रखे फटे-पुराने कागज। हो सकता है मुगल बादशाह या ईस्टइंडिया कम्पनी का फरमान। उससे पता चलेगा श्री श्रीयुत् अमुक बन्द्योपाध्याय महोदय के निवास-आवास के अन्तर्गत यह जमीन थी, उनके वंशधर पीढ़ी दर पीढ़ी इसे भोगते रहे हैं। जिसका वर्त्तमान हकदार है श्री अभिजीत बन्द्योपाध्याय। वे ही दखलदार हैं।

बस और कुछ की जरूरत ही नहीं। स्वत्वाधिकार और दखल—इन दो शब्दों के आधार पर अदालत अपनी राय दे देगी—उजाड़ दो लोगों को, दे आर ट्रेसपासर्स। धक्कार गिरा दो—दे आर अन अथराइज्ड् स्ट्रक्चरस्।

इसके बाद मालिकों की तरफ से होगी कार्यवाही की। वह अगर ठीक तरह से उस जगह पर जारी हुई तो पुलिस आकर कोर्ट का हुक्म तामील करेगी। किसकी

पुलिस ? गवर्नमेंट की। कौन गवर्नमेंट ? जिसने इन अभागों को उनके पुरखों के सत्वाधिकार और दखल से उजाड़ कर ला धकेला है यहाँ। वहाँ कोई कानून नहीं था, यहाँ है कानून का साम्राज्य। परिणाम दोनों जगह एक। लाठी के बल पर अधिकार पर कुछ फर्क है। वहाँ की लाठी सिर्फ भगा कर ही शान्त नहीं हुई। गाय-बैलों की तरह मारते-मारते खदेड़ दिया बहुत दूर। सिर्फ मार ? इसके साथ ही जो कुछ, इनके साथ हुआ वह गाय-बैलों के साथ भी नहीं होता। मर्द हाथ धो बैठा मर्दानगी से और औरतों का खो गया शील सर्वस्व। जिनकी जान गयी वह तो गयी। जो जान लेकर किसी तरह भाग पाये, वे खो आये सम्पत्ति, मान मर्यादा, अपने-आत्मीय-स्वजन और इनसे भी अधिक कीमती-मनुष्य होकर मनुष्य के ऊपर से विश्वास।

इस बस्ती के लोगों की शक्ल पर वह घिनौना किन्तु जीवित इतिहास लिखा है। बिना उसके इन लोगों को सोचा भी नहीं जा सकता। सवाल सिर्फ कानून का ही नहीं है। केवल मात्र अधिकार और अनधिकार के बंधे-बंधाये फारमूले में फिट करके इनका विचार नहीं हो सकता।

मास्टर साहब के पास आने के पहले अभिजीत बैठा-बैठा यही सोच रहा था, आदमी कानून को मान कर ही चले, जैसे यह बात सही है, वैसे ही कानून मनुष्य के लिये बने यह भी उतना ही सही है। आदमी की विचारधारा, जिन्दगी की रौ में रीति-नीति, सामाजिक अवस्था जैसे-जैसे बदलती है, कानून को भी मोड़-तोड़कर उसके साथ मेल मिला लेना पड़ता है। पुराने जमाने के कानून से नये जमाने की समस्याओं को हल करना क्या सम्भव है ?

यह तो हुई सरकार की बात। आदमी के जीवन में जब कोई नया सवाल उठता है, उसके लिये भी यही बात लागू होती है। हमारा मन पुराना है, पुराने चश्मे से उसका मूल्यांकन नहीं कर सकता। उसे समझने के लिये उसके अन्तर्निहित रूप की उपलब्धि करने जैसा नया मन चाहिये। अगर वह मेरे पास नहीं है तो किसी ऐसे की शरण में जाना होगा, जिसके पास वह है। इस बस्ती के मामले में किसी एक ऐसे का अभाव अभिजीत को महसूस हो रहा था। इसे अब उसने मास्टर साहब के सामने रखा, "माना कि नायब कक्का को छोड़ दिया, मगर इसके बाद ?"

दुर्गा मोहन जी बोले, "नये नायब को रखने की सोच रहे हो ? इसकी क्या वैसी कोई जरूरत है ? आज जमींदारी का जो थोड़ा बहुत काम है वह तो गुमास्तों से ही चल जायेगा।"

"मैं जमींदारी के बारे में नहीं सोच रहा हूँ। सोच रहा हूँ शम्भूचरण एण्ड कम्पनी के बारे में।"

दुर्गा मोहन जी हँसे। शम्भूचरण के बारे में वे पहले से ही सब कुछ जानते थे। वे कहने ही वाले थे कि यह काम किसी और से होने वाला है क्या ? फौरन उन्हें याद

आया, कुछ क्षण पहले ही अभिजीत ने कहा था, कुछ दिनों के लिए ही आना हुआ है। इसलिए वे रुक गये।

सहसा अभिजीत ने कलाई में बंधी घड़ी देखकर उठते हुए कहा; "ठीक है, यह बात फिर कभी होगी। आज चलूँ, आपके नहाने-खाने का समय हो गया है।"

घर लौटते की राह मैदान से तिरछा काटकर आने की थी। उधर से न आकर अभिजीत ने घूम कर जाने वाली सड़क पकड़ी। गंगा के किनारे-किनारे। कुछ दूर आने पर उसके घर की सरहद शुरू हुई, नदी तक वह फैली है। पूरी तरह आज बस्ती की दखल में है। खास-महल के दोमहले से यह देख चुका है। यह हिस्सा वह अच्छी तरह नहीं देख सका था। पंक्तिबध्द टीन के छप्पर और झोपड़ियाँ देख कर भूली हुई पीड़ा ताजी हो उठी। अजब भद्दा और अव्यवस्था का सम्राज्य। 'प्लान' कुछ होता है, इसका कोई ख्याल नहीं, रुचि का तनिक भी ध्यान नहीं। कहीं अन्त नहीं। किसी-किसी झोपड़ी के सामने हिस्से में चीरे हुए बाँस या फट्टे का घेरा। उसके बीच दो-चार छोटे-छोटे केले का पेड़ सीधे में सिर उठाये खड़े-अड़े हैं। कहीं-कहीं लता-गुल्म इच्छा के अनुसार फैले हैं। और बैरोक-टोक खिल उठे हैं ढेर-सारे फूल। रूखी, कठोर अनिवार्यता के दायरे में थोड़ी बहुत अअनिवार्यता की दखल।

वे स्वयं नहीं आये। इन लोगों ने ही कहीं से लाकर लगाया है। ये ऊपर से जितने भी रूखे-सूखे हों, लगता है अन्तर अभी भी बिल्कुल सूखा नहीं है। धीरे-घरे सूख जायेगा, सूखने भी लगा है। हाल फिलहाल के विगत अतीत का नृःशंस इतिहास और मौजूदा वर्तमान के कठिन दिनचर्या की निर्मम मार ने जिस पथ पर इन्हें धकेल दिया है, उसमें हो सकता है, सौन्दर्य, मधु-रस बूंद भर भी ढूंढ़ें न मिले। जो चाल चल कर ये एक सुन्दर, सुखद, स्वस्थ्य मानव समाज के रूप में बढ़ सकते थे, इस तरह रहने पर वे ही कुत्सित, नीचत्व, उच्छृंखल 'जनता' में बदल कर जायेगें। उस भयानक सड़ांध से इतने सारे लोगों को बचाने का क्या कोई उपाय नहीं है!

यह चिन्ता कई दिनों से अभिजीत को बेचैन किये थी, और इस क्षण गंगा के किनारे-किनारे धीरे-धीरे यही सारी बातें मन ही मन वह सोचता-विचारता चला जा रहा था।

एक झुंड नंगे-अधनंगे लड़के-लड़कियाँ उछलते-कूदते अभिजीत के सामने से नदी की ओर जा रहे थे, शायद नहाने के इरादे से। सहसा उसने देखा, आपस में उनमे से कोई मार-पीट करने लगे हैं, कोई बात नहीं पर इसका ढंग कुछ और ही था। अलावे इसके लात, घूंसे, धक्का-मुक्की के साथ-साथ जो गंदी-भद्दी गालियाँ बक रहे थे वे, उसे सुन कर कानों में अंगुली ठूंस लेनी पड़ी। जब कि जरा भी गौर करने पर यह अन्दाज आसानी से लग जायेगा कि जिन्हें 'निम्नवर्ग' या चालू भाषा में 'नीच' कहा जाता है, ये उस मिट्टी के नहीं थे। नाम पूछने पर कुछ ऊँच वर्ग की उपाधियाँ भी मिलेंगी।

और भी एक चीज अभिजीत की आँखो मे खूब खटकी। झुड मे जैसे कुछ बडे लडके थे, वैसे ही कई लडकियाँ भी थी जिन्हे छोटी कहना उचित नही होगा। सभी गदा फ्राक पहने थी, किसी-किसी का फ्राक फटा भी था। उनकी ठीक-ठीक उम्र का पता उसे नही चला। मगर यह पता है, जिस देश से ये वहाँ आई हैं, वहाँ इस उम्र की कोई लडकी बिना अपना या पडोसी के सग-साथ इस तरह लडको के झुड के साथ नहाने नही जाती। वैसे इस इलाके मे रहने वाली भी नही जाती। यह ठीक है कि पश्चिम की तुलना मे पूर्व की लडकियाँ कुछ अधिक फ्री होती हैं, घूमने-फिरने मे आजाद और लापरवाह। मगर यह और बात है। उनमे शर्म-हया का अभाव नहीं होता। कुछ बडी होते ही, लडका से आबरू बचाने के लिए वे बहुत कुछ मान कर चलती हैं। यह सिर्फ उसका ख्याल नही है, उसने देखा है। काशी मे उसने इस पर गौर किया है। काशी तो समस्त भारत का सगम है। सभी इलाके के, हर तरह के आदमी को वहाँ करीब से देखा जा सकता है। खास कर तब जब कभी 'योग' लगता है, विविध भेष भूषाधारी, विविध भाषा-भाषी, विभिन्न उम्रो की नर-नारी, गली-कूचो मे, मठ-मन्दिरो मे, घाट की सिढ़ियों पर दो दिनो के लिए घर बसा लेते हैं, उनकी खुली हुई जिन्दगी सहज मे ही पकड मे आ जाती है। वहाँ उसने आन्ध्र, उत्तर प्रदेश, गुजरात और पजाब के साथ-ही-साथ पूर्वी बगाल को भी खोट-खोट कर देखा है, प्रभावित हुआ है, उनमे से दो चार परिवारो मे घुला-मिला भी है। यह सब उसका अजाना नही है। लडकियाँ किसी से कम लजवती नही, यह भी उसने गौर किया है।

आज इन लडकियो को देखकर उसे लगा, उनमे भी टूटन शुरू हो चुकी है। इनके माँ-बाप, रिश्तेदार इस सम्बन्ध मे सिर नही खपाते। वह सब बाते मानो यहाँ फिजूल हैं। लडके-लडकियाँ, खासकर जो बडी हो चुकी हैं, उनका भविष्य, लज्जा, चाल-चलन, पहिनने-ओढने पर नजर रखने की अब जरूरत नही रही। यही मनोभाव बन गया है। वे जहाँ आ पहुँचे हैं, वही उनकी जड है।

आँधी या बाढ के थपेडे से जिस नाव का लगर टूट चुका है, उसे जैसे किसी ओर देखने का अवकाश नही होता, सिर्फ ध्यान रहता है—किस प्रकार प्राण बचे, वैसे ही ये हैं आज। समाज के बन्धन से टूट चुकने के बाद उससे इनका कोई सपर्क नही रहा। उसके नियम-कानून मान कर चलने की भी कोई जरूरत नही रह गयी। आज सिर्फ एक ही चिन्ता है—कैसे जिन्दा रहे।

एक और बात पर अभिजीत ने गौर किया, बडी तकलीफ के साथ। लडका की मार-पीट को बडी लडकियाँ भी हँस-हँस कर देख रही थी। उनकी बुरी-से-बुरी गालियो का भी कोई असर उन पर नही था। उन गालियो के नगे अर्थों का भी जैसे वे मन-ही-

मन उपभोग कर रहीं थीं। मान लिया न भी कर रही हों, क्योंकि हो सकता है उन्होंने शर्म-हया का बोध खो दिया हो। उनमें किसी-किसी के तन-बदन पर जवानी के लक्षण भी उभरे थे, पर आँखों में संकोच, होंठों पर लाज की छुअन नजर नहीं आयी। इससे बड़ा खालीपन आदमी की जिन्दगी में और क्या हो सकता है? किस राह के राही हो गये हैं ये? क्या इन्हें अब भी लौटाया नहीं जा सकता? मगर कैसे?

महामाया अपने घर के काम-काज में उलझी रहीं। अभिजीत के आते ही शिकायत के स्वर में बोली, "कहाँ गये थे, अयँ? कितनी देर हुई, कुछ ख्याल है?"

"देर कहाँ हुई! अभी बारह बज कर बीस मिनट ही हुए हैं। वहाँ था तो—।"

"रहने दो, वहाँ क्या करते थे क्या नहीं, मैं देखने थोड़े ही जाती थी। यहाँ जो इतनी देर से खाओगे और खराई हो गयी तो?"

अभिजीत बनावटी गंभीरता के स्वर में बोला, "आजादी बड़ी कीमती है, मेरी समझ में अब आया।"

महामाया चौके की ओर जा रही थीं। मुड़ कर खड़ी हो, ओठों में हँसी छिपा कर बोलीं, "मगर मैं तो तुम्हारी आजादी में दखल नहीं देती। जो मन में आये करो। सिर्फ—।"

"यह 'सिर्फ' ही यह अहसास कराता है कि आजादी और बहूरानी के राज में कितना फर्क है।"

महामाया प्रसन्न हुईं। हँसी रोके न रुकी। बोलीं, "बहूरानी का राज अब है के दिन? असली रानी जब आकर सिंहासन पर आसीन होगी, तब देखूंगी आजादी के लिए कितना अफसोस होता है।"

अभिजीत कुछ कहने जा रहा था कि बहूरानी ने रोक कर कहा, "बस-बस, जल्दी नहा लो। मैं खाना लाने को कहती हूँ।"

खाने गया तो अभिजीत अवाक्। घर ठीक है। घर वही है, जहाँ उसके पिता जी बैठकर भोजन किया करते थे—कई वर्ष पहले, माँ पंखा लेकर बैठती उनके बांयें। बड़े से पीढ़े के सामने रखी होती सोननीय चाँदी की थाल, उसके तीन तरफ सजी होतीं छोटी-बड़ी कटोरियाँ। बहूरानी ने इस बार जब वह आया तो वहीं खिलाने का इन्तजाम किया था। बहुत कुछ उसी पुराने ढंग से, सिर्फ उसमें कमी थी तो पहले के राज-सी ठाठ में, वह भी कुछ-कुछ।

आज का तरीका कुछ और ही था। पीढ़ा, वजनदार थाली, गिलास, कटोरे सब नदारत। उसकी जगह थी उजले सफेद टेबुल क्लाथ से ढँकी खाने की मेज। बर्तन जरूर

काँसे के थे, आकार में कुछ छोटे हल्के और बिना नक्काशी के। झकझकाहट ऐसी जैसे मुंह दीखे।

महाराज के पीछे-पीछे बहूरानी के कमरे में आते ही अमि ने उनकी ओर पलकें उठा कर देखा। आंखों में अचंभे में डूबा सवाल। उन्होंने कहा, "देखो, ठीक है या नहीं? यह मेरी बुद्धि नहीं है, मैं तो इस मामले में बिल्कुल अनाड़ी ठहरी। पर किशन को यह सब अच्छा लगा है।"

किशन अमि का बनारसी नौकर है। मालिक के संग-साथ सभी जगहें जाता-आता रहता है। यहाँ भी आया था।

अमि ने कहा, "यह सब करने को किसने कहा?"

"कहेगा कौन? इसके साथ चीनी मिट्टी के बर्तन होते तो खूब फबता, किशन ने कहा भी था। पर मेरा ही मन हिचक गया और फिर अपनी नौकरानियों का हाथ जो ऐसा है कि दो ही दिनों में सब शेष! इसलिये यही ठीक है। इसमें तो कोई दिक्कत नहीं है न?"

"नहीं, दिक्कत क्या है? इतने दिनों से जिस तरह खाता रहा हूँ, उसी में क्या दिक्कत थी? पर कुछ मुश्किल जरूर होगी।"

"कोई मुश्किल नहीं होगी, बैठो तो तुम।"

पीढ़े या आसन पर पैर मोड़ कर, झुक कर खाने की आदत बहुत दिनों से छूट गयी थी। यही आदत अब डालने में अभिजीत को कुछ परेशानी महसूस हो रही थी, लेकिन उसने यह किसी को जानने नहीं दिया फिर भी बहूरानी भांप गयी थी। इसलिये उन्होंने सदा की रीति बदल कर ऐसा इन्तजाम किया था। उससे कुछ पूछा भी नहीं, यहाँ तक कि जानने तक नहीं दिया। इन्तजाम सब रातों-रात कर उसे अचम्भे में डाल दिया।

खाते समय देवर को हिचक थी। बहूरानी ताड़ गयी थी, मगर उसका मूल कारण मात्र आदत नहीं थी, यह वे समझ नहीं सकी। उसका मतलब और भी गहरा था। खाने के मामले में साज आडम्बर जैसा प्रदर्शन था, यही उसके मन को लगा था। आसन और बर्त्तनों के आकार-प्रकार, वजन और बहुलता, खाने की चीजों की अधिकता, और इससे भी अधिक इसमें जो एक खास मानसिकता जुड़ी थी, उससे वह अपने मन का तारतम्य जोड़ नहीं पा रहा था। बहूरानी से यह साफ लफ्जों में कहना उचित भी नहीं लगता। उनके लिये ये सब कुछ इस परिवार की मर्यादा का अंग था। उसकी बुनियाद में पैठा उस मरम की तह में वे पहुँच जायेंगी, यह सोचा भी नहीं जा सकता था। मगर अमि को तो वे जानती है, इन कई दिनों में उसे बहुत ही करीब से देखने का मौका मिला है। हो सकता है, इसी से उनकी यह धारणा बनी हो कि इससे वह खुश नहीं है।

यह सब सोच कर ही अभिजीत बहुत अचम्भे में डूब गया तथा इस क्षण बहूरानी के प्रति श्रद्धाविनत हो गया। साथ ही दुर्गा मोहन बाबू के घर से निकल कर इस सड़क पर धीरे-धीरे वह जो कुछ सोचता-विचारता रहा था, उसके बारे में भी उसे बहुत कुछ भरोसा हुआ। इस बस्ती को लेकर जो उलझनें हैं, उसे इस परिवार की पतोहू की नजर से ही महामाया नहीं देखें, अभि का मन पढ़ने की भी कोशिश वे करें, उसके किसी काम में वे अड़ंगा न लगायें, चाहे वह उनके मन मुताबिक हो या नहीं, पर वे चुप रहें। इतना ही वह चाहता है और वह निश्चिन्त भी है। लेकिन इतना ही तो बस नहीं है। सिर्फ चुप रहने या अनिच्छा से कुछ मान लेने से ही तो काम नहीं चलेगा। बहूरानी की मंजूरी भी जरूरी है। यह मात्र उसकी भावना नहीं, आवश्यकता है। इस बारे में अभी तक उसे भरोसा नहीं मिल रहा था, अब उसे कुछ विश्वास हुआ। ऊपर से देखने पर यह मामला बस इतना ही है कि पीढ़ा की जगह टेबिल-कुर्सी। पर बहुत बार बहुत तुच्छ वस्तुओं में भी कुछ महत्व का संकेत छिपा रहता है।

भोजन कराने की पद्धति में परिवर्त्तन होने पर भी इस क्षण बहूरानी का जो नित्य-कर्म था वह पहले जैसा ही था। फर्क बस इतना ही है कि पहले इस अवसर पर बैठ कर सब किया जाता था, अब बगल में खड़ा रहना पड़ा। वे अपना काम शुरू करने ही वाली थीं कि अभि बोल उठा, "ओह, रहने भी दो।"

"क्या ?"

"यह पंखा।"

"क्यों ?"

"अंग्रेजी में इसे कहा जाता है ऐनाक्रॉनिज्म। मतलब जिस काल का जो नहीं है, उसे उस काल में घसीटना। यह इतिहास की दृष्टि में भयानक दोष है।"

"मगर ये मक्खियाँ माने तब न ? ये तो इतिहास का कर्ज खाये नहीं हैं।"

"तो एक काम करो। मेरे जैसा ही एक ऊँचा आसन और मँगा लो।"

"कोई जरूरत नहीं। तुम खाओ। मुझे कोई तकलीफ नहीं है।"

"तुम्हें नहीं है, मुझे तो है। एक तो यह मेरे मन के खिलाफ है कि कोई मौज से खाये और कोई उसे पंखा झलने का कष्ट करे, यह मुझे बड़ा बुरा लगता है और फिर इस तरह एटेंशन होकर खड़ा रहना।"

"अच्छा नहीं, मैं बैठी जाती हूँ……।"

महामाया ने नौकर को बुला कर कुर्सी मँगवा ली। उस पर बैठते हुए बोलीं, "यह मामूली-सी बात भी तुम्हें बुरी लगती है ! उसकी वजह है, तुम असल में गलत जगह बैठ गये हो।"

अभिजीत कुछ समझ नहीं सका, इसलिये महामाया की ओर नजर उठाते ही उन्होंने बात आगे बढ़ा दी, "इसमें हम लोगों को कोई तकलीफ नहीं होती, तुम यह

नही जानने न···।" फिर पल भर रुक कर उन्होंने जैसे अपने आप से ही कहा, "तुम्हारा कोई दोष नही है। जानने का अवसर हम लोगों ने दिया ही कहाँ ?"

महामाया के लहजे मे उदासी थी। चेहरा फीका पड गया था। वे इसके आगे कुछ न कह कर धीरे-धीरे पंखा झलती रहीं, अमि भी चुपचाप खाना रहा। बहूरानी के अन्तिम वाक्य मे जो इशारा था, वह उससे छिपा न रहा।

कई मिनट बीतने के बाद अमि ने ही बात छेडी, शायद वातावरण को कुछ सहज बनाने के ख्याल से, "तुम्हे देख कर मुझे एक कहानी याद हो आयी भाभी !"

"कहानी ! जरा मैं भी सुनूँ।" महामाया हँसती हुई सहज भाव से बोली।

"छोडो अभी, फिर कभी। कहानी सुनाऊँगा तो तुम्हें भोजन का वक्त भी नहीं मिलेगा।"

"नही, कहो।"

"विद्यासागर के दोस्त थे हेरिसन साहब। सिर्फ दोस्त ही नही, भक्त कहो। मेदिनीपुर जब वे कलक्टर होकर गये, तो साहब के मन मे आया कि वे विद्यासागर की माताजी के दर्शन करें। जिस माता का ऐसा पुत्र है, पता नही वह कैसी होगी। लो सँभालो। उस जमाने की ब्राह्मण कुल की रमणी साहब-सूबे के आगे कैसे होती। एक तो म्लेच्छ और ऊपर से विदेशी। यानी करेला उस पर नीम चढा। फिर जिला मजिस्ट्रेट साहब को कैसे टाला जाये ! यही चिन्ता थी। कि भगवती देवी कह बैठी 'उसे बुला लो। इतना बडा साहब है तो क्या हुआ, आखिर वह अपने ईश्वर का दोस्त ही है न ! और जब अपने मन से ही आना चाहता है, तो मना करने से अपने ईश्वर का ही मान तो घटेगा।'

"फिर क्या था। हेरिसन विद्यासागर के घर पधारे। कभी जिसने गाँव के बाहर पैर नही रखा, बेटे के हजार कहने पर भी, ऐसी एक ब्राह्मण कुल की स्त्री, कायदे से पर्दानशीन, वे एकदम उन्मुक्त भाव से अंग्रेज मजिस्ट्रेट के सामने आ खडी हुई। जैसे किसी अपने जन की अगवानी करने घर की मालकिन आयी हो। ईश्वर से ही सुन रखा था कि साहब कुर्सी पर बैठते हैं। कुर्सी की व्यवस्था पहले से कर ली गयी थी। उस पर उन्हें बैठा कर खुद भी एक कुर्सी पर बैठ गयी और ठेठ मेदनीपुर की बोली मे बातें करने लगीं। इधर-उधर की बातो के बाद वे उस पक्के विलायती सिविलियन से बोली, 'तुम्हे खा-पी कर जाना होगा। मैंने तुम्हारे लिय स्वय खाना बनाया है।'

"साहब ठक् बैठे देखते रहे।

"उसी कुर्सी के सामने टेबुल लगायी गयी। साहब को उन्होंने क्या-क्या खिलाया यह तो विद्यासागर की जीवनी मे कहीं लिखा नही है। पर खाना विलायती तो होगा ही नही, होगा भात-दाल, तरकारी और मछली का रसा। हो सकता है, वे मेदनीपुर की थीं, रसे की जगह पोस्ते की भुजिया जरूर रही होगी। उनके जीवनी लेखक यह लिखना

नहीं भूले कि अपने बेटे के दोस्त की बगल में पंखा झलती हुई वे यह कहती रही—'यह खाओ, यह चख लो, इसे भी मुंह में डालो........।'

"उन्होंने जो बातें की थीं हेरिसन अपने मामूली बंगला के ज्ञान से, कितना क्या समझ पाये होंगे यह बताना मुश्किल है। मगर एक बात बिना संदेह, उनके मन में उठी होगी कि बिना ऐसी मां के इतना महान पुत्र जन्म नहीं ले सकता।"

महामाया तन्मय होकर सुन रही थीं। उनका पंखा झलना रुक गया था। कुछ कहते-कहते इसका ध्यान आया तो झट वे पंखा झलने लगीं।

शायद वे यह पूछना चाहती थीं कि अभिजीत को यह कहानी क्यों याद आयी। महामाया संकोच में पड़ गयीं और इसलिये कहते-कहते रुक गयीं। उनका देवर गंभीर स्वभाव का है, यह इन कई दिनों में वे समझ चुकी थीं। आज इस मामूली घटना से उन्हें क्या मिला, यह तो वे ही जानें। कहानी की स्थिति का जो मेल आज की परिस्थिति से है, वह ऊपरी है। अगर अभिजीत उन्हें घसीट कर भगवती देवी से मिलान करेगा तो महामाया शर्म में डूब जायेगीं। इसलिये उसे इस प्रसंग से हटाने के लिये उन्होंने बात छेड़ी, "कहानी सुनाने में तुम ने कुछ खाया नहीं लाला।"

अभिजीत का ध्यान उनकी इस बात की ओर नहीं गया। गया भी हो तो वह अपने विचार में डूबा रहा। बोला, "संसार में ऊपर उठना कितना मुश्किल है, खास कर वैसों के लिये, जो संस्कार में जिन्दगी भर चिपके रहते। खैर छोड़ो। तुमसे कुछ जरूरी बातें करनी है भाभी। अभी नहीं, शाम को। तुम्हें वक्त मिलेगा न?"

"मैं इतना क्या करती हूँ जो वक्त नहीं मिलेगा?....जरा रुको, भात ठंडा हो गया, एक मुट्ठी गरम-गरम लाती हूँ।"

महाराज को वे बुलाने जा रही थीं कि अभिजीत ने रोका, "नहीं, नहीं, यही काफी गरम है। और नहीं चाहिए।" कहते हुए बचा हुआ खाना जल्दी-जल्दी खाने में वह लग गया।

५

उनसे अभिजीत क्या बातें करना चाहता है, इसका कुछ-कुछ अन्दाज बहूरानी को है। पर 'तुमसे कुछ जरूरी बातें करनी हैं भाभी' इसके द्वारा मन का जो विशेष रूप उद्घाटित हुआ, वह बिल्कुल भिन्न था।

इस शरणार्थी समस्या से अभिजीत के मन में एक गहरी बेचैनी थी,।जब से वह यहां आया है तब से उन्हीं के बारे में सोचता रहता है, यह वे जानती थीं। बेचैनी उन्हें भी कम न थी, पर वह दूसरे प्रकार की थी। यह जो इतने सारे लोग बिना कुछ कहे, सुने,

अचानक उड़कर आये और जुड़कर बैठ गये, उनके घर से सटी ही नही, उसी मे—इतनी जमीन बिना किसी हिचक के जबर्दस्ती दखल कर बैठे, यही उनकी बेचैनी थी। सदर नायब पहले तो गुस्सा हुए थे, बाद को सिर ठोक कर हाथ पर हाथ रख कर बैठ गये थे। जमीदारी पर सरकार ने कब्जा कर लिया है। लाठी-सोटा, पाइक-बरन्दाज भी बरखास्त हो गये। रह गये सिर्फ ये—बिना हथियार के हरगोविन्द। कई दिन सरकारी दफ्तरो का चक्कर काटा। थाना गये, जिला मजिस्ट्रेट से मिले। कैसे इस जमीन का उद्धार हो? किसी से कोई भरोसा नही मिला। शरणार्थियो से भिड़ने के लिये कोई राजी नही। हार कर बहूरानी से मालिक को पत्र लिखवाया। सदा परदेस मे रहने पर भी वे ही तो सम्पत्ति के एकमात्र उत्तराधिकारी हैं। वही आये।

वह जब आया, देखा, तो शरणार्थियो को लेकर उसका मन भी बेचैन हो उठा। मगर उसकी बेचैनी कुछ और थी। बहूरानी को इसका आभास था। चुप लगाये रही। सदर नायब भी समझ गये मगर वे चुप नही रहे, इस्तीफा दाखिल कर दिया। खोल कर सब सामने रख दिया। मालिक से जब मूल विषय मे ही मत-विरोध है, तो रहा कैसे जा सकता है?

इतने दिनो के अनुभवी, शुभेच्छु प्रधान कर्मचारी को छोड़ने की इच्छा अभिजीत की नहीं थी। पहले उसे कोई उपाय नही सूझा फिर उसने सोचा, सिर्फ अपना ही सोचा तो काम नहीं आता नायब के पक्ष से भी सोचना जरूरी है। जब अन्तिम रूप से वह समझ गया कि अब उन्हे रोका नही जा सकता, और मास्टर दुर्गा मोहन जी ने भी यही कहा, तब बहूरानी के ऊपर ही सब छोड़ दिया गया।

पर उनके मन की बात अव्यक्त रहते हुए भी अभिजीत के लिये अस्पष्ट नही थी। ये नायब ही थे। बंद्योपाध्याय परिवार के अन्तिम स्तम्भ। यहाँ का सब कुछ इन्ही के कन्धे पर था। और यदि यह कन्धा ही हट जाये तो फिर रह क्या जायेगा? फिर भी बहूरानी चुप रही। और अपने को, यह सोचकर सन्तोष दिया कि नायब की तरह वे भी उस प्राचीन युग की आखिरी निशानी है, परन्तु कुछ फर्क है। नायब जा सकते हैं, वे नही जा सकती। वे इस घर की हड्डी-पसली से जुड़ी हैं, वहाँ से हट कैसे सकती हैं?

और भी, वे तो इस घर की पतोहू ठहरी। घर के लोगो का मन रख, ताल मे ताल मिला कर चलना उनका काम है। इत्ती-सी जब थी, तब यहाँ आयी। तब से अब तक यही सीखा है और सीख की परीक्षा भी दे चुकी है। कभी फेल नही हुई। जब वे अकेली हो गयी, सिर पर किसी का हाथ न रहा, फिर उसी पुराने ताल से ताल मिलाती रही। सदर नायब जब भी उनसे कुछ पूछने-ताछने आये हैं, तब सिर्फ एक ही बात वह कहती रही हैं, "मैं भला क्या कहूँ नायब जी। मालिको के समय से जो जैसा करते आ रहे हैं वही करिये।"

इसी तरह इतने वर्ष बीते।

अभिजीत जब आया तब उसे देखकर, दो-चार बातें करने के बाद, उसके हाव-भाव से महामाया को लगा कि पुरखों का जमाना अब लद गया। जितने दिन बीतते गये, उतनी ही उनकी धारणा मजबूत होती गयी। वे समझ गयीं कि अब राग बदलना होगा। इस नये मालिक की लय कुछ और ही है। उन्हें भी अपना स्वर मिलाना होगा।

बहूरानी ने वही राह पकड़ी। इसके लिए कोई खास असुविधा नहीं हुई। इसके लिए विधाता की इन पर कृपा होती है। नये से, अनभ्यस्त और अपरिचित से तालमेल बैठा लेने की एक विचित्र क्षमता अपनी इस नारी नामक सृष्टि को उसने खास तौर पर प्रदान की है। नारी सब कुछ कर सकती है। वह थोड़े प्रयास से ही हर अवस्था में अपने को ढाल लेती है। अपनी इच्छा, अनिच्छा, ख्याल-खुशी, अभ्यास-आदर्श सब कुछ को काँट-छाँट कर नये फ्रेम में फिट कर सकती हैं। पुरुष यह इतनी आसानी से नहीं कर पाता, यह नहीं-वह नहीं की स्थिति में पड़े रह कर अपने को फ्रेम में फिट नहीं कर पाता। उठते-बैठते उनके मन में हिचक होती रहती है।

महामाया को एक और सुविधा थी। अभिजीत उसे तब मिला जब वह यहाँ दुल्हन के रूप में आयी थी। यह एक सुविधा थी। उस दिन की वह दस ग्यारह की लड़की एक मामूली परिवार से सिर्फ रूप के नाते इतने बड़े वंद्योपाध्याय के घर की बहू बन कर आयी, और जब उसने अपने चारो तरफ किसी को नहीं पाया, तब उसे मिला यह झेंपू, मुँहचोर देवर, यह अभि – फैले हुए दरिया में स्नेह से घिरा छोटा-सा टापू। अभि के लिए भी उस समय अपने पुरखों के विशाल वैभव में माँ के सिवा और कोई नीड़ नहीं थी। पर माँ की निकटता भी सहज नहीं थी। पूरे परिवार का बोझ उन पर ही था। इसलिए उसकी जिन्दगी बहुत खाली-खाली थी। उसी खाली को बहूरानी ने भरा था।

फिर चला, देखा-देखी, मिलने-जुलने में बाधाओं का क्रम। सब कुछ दबा रहा। दोनों के एक दूसरे के सामने आ खड़े होते ही स्वर्ण सुयोग मिल गया।

उस दिन शाम को महामाया काम-काज से फुर्सत पाकर जब आयी तब अभिजीत इन शरणार्थियों की चर्चा छेड़ बैठा। इनसे जो-जो समस्याएँ उठी हैं, उन्हें हर पहलू से उनके सामने रखने की कोशिश उसने की। इन लोगों से उसे जितनी भी सहानुभूति क्यों न हो, उनके इस 'जबर-दखल' करतूत से बहुत क्षुब्ध। सिर्फ भीड़ के जोर पर और मुसीबतों की दुहाई देकर दूसरों की जगह में अनधिकार घुसना अक्लमंदों का काम नहीं है। कोई भी समाज-व्यवस्था इसे मंजूर नहीं करेगी। देश के मौजूदा कानून की नजर में भी भयानक अपराध है। वही अपराध अचानक एक भयंकर रूप में उभर आया था। इसीलिए सरकार कुछ उलझन में पड़ गयी थी और वह क्या करे यह सोच नहीं पा रहा था। मगर यह समस्या तो उसी की पैदा की हुई है, उसकी ही गलत

नीतियों का ही यह फल है। फिर भी कोई भी सरकार के आगे झुके तो कैसे। झुकने पर राष्ट्र की बुनियाद हिल उठेगी। सरकार की मदद से ही इन्हे ठीक किया जा सकता है। समय तो कुछ लगेगा ही ऊपर से पानी की तरह से धन भी बहेगा। साथ ही कुछ जानें भी जायेगी। सब समय था। ऐसी हालत मे पहले वें मालिको की कार्रवाई ही ठीक थी। फिर भी एक बात पर विचार करना जरूरी है। उसी बात पर जिसे वह अभी कई घटे पहले दुर्गा मोहन बाबू के घर से लौटते समय सोचता आ रहा था,। रास्ते मे जो कुछ जैसा उसने देखा था उससे उसका मन कचोट रहा था। यह सब उसने बहूरानी से कहा, इसी सिलसिले मे और भी कहा। कहा कि—जिस जिन्दगी से ये टूट चुके हैं, यह कहना ठीक नही होगा, बल्कि यह कहा जाये कि मनुष्यरूपी हिंसक जानवरो ने इन्हें जिस जिन्दगी मे तोड दिया, वह वही जा पहुँचे।

"जानती हो भाभी! अभी उस दिन तक ये थे। बडे भोले और शान्त। खेती-बारी, कारबार, नौकरी-चाकरी करते रहे। इनके बाल-बच्चे कितनी मुसीबतें उठाकर नहर-नाले पार कर पढने जाते रहे, दूर-दूर स्कूलो मे। वहाँ से लौट कर खाली समय मे माँ-बाप के हर काम मे वे हाथ बँटाते रहे। ये जितने बेबस थे उतने ही शान्त और वैसे ही आदर्श के पक्के बहुएँ बिना किसी झिझक के पोखर पर नहाती थी। कमर पर गगरा लेकर दूर से ट्यूबवल से पानी लाती थी। सभी मर्द दिन भर की मशक्कत के बाद ढोल-मजीरा लेकर किसी पडोसी की दालान मे इकट्ठे हो जाते थे। झगडा-झझट मार-पीट, कोर्ट-कचहरी इस गाँव-उस गाँव मे ठनाठनी नही थी, ऐसी बात भी नही। कुछ-न-कुछ बरस भर लगा ही रहता था। यहाँ-वहाँ कुछ-कुछ गुडे-बदमाश होते ही थे। मगर इनसे इनके बँधे-बँधाये सामाजी जीवन मे कोई फर्क नही था। समाज बन्धन का जो बँधा-बँधाया था वही अटूट था। ऐसे लोगो के अन्तर और बाहर मे जैसा परिवर्तन हुआ है कि क्या कहा जाये। आदमी इतना नीचे उतर जाएगा यह सोचा भी नही जा सकता।" यह कहते हुए अभिजीत ने ऐसा भाव प्रकट किया जैसे घिनौना रूप प्रत्यक्ष देख रहा हो।

बहूरानी ने महसूस किया कि अभि के चेहरे पर दुःख का झीना पर्दा गिर आया हो। दूसरे ही क्षण वह फिर अपने पुराने प्रसग पर लौट आया, बोला, "मैं, जानती हो भाभी, उन्हे उसी जिन्दगी मे लौटा ले जाना चाहता हूँ। जैसे भी समय हो।"

महामाया के सोचने का ढग यह कभी नही रहा, जब कि इन बेहूदे लोगो के प्रति उनका प्यारा-दुलारा देवर सदा से ही ऐसा कृपालु बना हुआ है। बात-चीत मे इसका आभास उन्हे मिलता रहा है। शुरू मे उन्हे इससे कुछ झुँझलाहट हुई थी। वह भी यह सोचकर अभिजीत ने इनका असली रूप अभी नही देखा है। गरीबी की वजह से फिजूल इन्हे यह विश्वास हो गया कि सिर्फ दया या सहानुभूति ही नही, इसकी जड कही और गहराई मे है।

अभि ने कहा, "यह काम बहुत जटिल है। असली बात तो यह है कि इसके लिए कौन'बढ़े ?"

"और कौन ?" बिना हिचक महामाया ने उत्तर दिया, "तुम, तुम बढ़ो, यों आगे-पीछे लोगों की कमी नहीं रहेगी।

अभिजीत को याद आया कि दुर्गा मोहन ने भी यही कहा था। कोई भी यही कहेगा। अभि ने धीरे- धीरे कहा, "उहूँ, मुझसे नहीं होगा।"

"क्यों ? क्या फिर भागने की मर्जी है ? लाला अब भाग नहीं सकोगे। इस बार पैरों में बेड़ी डाल कर ही दम लूँगी मैं।"

यह कह कर बहूरानी होठों के भीतर मुस्कराईं। उन्होंने फौरन महसूस किया कि इस मजाक का देवर पर कोई असर नहीं पड़ा। जैसे उसने सुना ही नहीं। जिस प्रकार उदासीन होकर अभि ने यह कहा था—मुझसे नहीं होगा—उसी प्रकार उसने कहा, "देखो न, जैसे हैं नायब कक्का। उनकी तरह के काम के लोग कहाँ मिलेगें ? मगर इस मामले में वे भी कुछ नहीं कर सके। तभी तो वे खुद ही हटना चाहते हैं। मैं भी सोचता हूँ। अब रोकने में लाभ भी क्या है।"

'उनकी बात और है। जीवन भर सब कुछ वे जिस दृष्टि से देखते आये हैं, इस उम्र में उनमें परिवर्तन संभव नहीं है। और सबसे बड़ी बाधा तो यह है कि शरणार्थी लोगों ने उन्हें बहुत सताया है। उनका अपमान किया है, वह यह भूल जायें—?"

"जानता हूँ भाभी, उनकी परेशानी मैं खूब समझता हूँ। उन्हें मैं दोष नहीं देता। मेरे सामने भी तो दिक्कतें हैं जो उनकी उस परेशानी से ज्यादा महत्वपूर्ण हैं।"

बहूरानी अभि की उस दिक्कत का अन्दाज नहीं लगा सकती थीं। इसलिए उसको ताकती रहीं। अभिजीत बोला, "ठीक-ठीक यह तुम्हें समझाना मुश्किल है। हो सकता है तुम्हें सब कुछ सपना लगे। फिर भी सुनो—यह कोई रहस्य नहीं है। इसे मैं पग-पग पर अनुभव करता हूँ।...जो कुछ मैंने तुमसे कहा उसे सही रूप देना मेरे बूते का नहीं है। काम करने की दृष्टि से नहीं, भावना के कारण। मतलब इन लोगों से मुझे जितनी भी हमदर्दी क्यों न हो, इनमें उतर कर, इनके दुःख-दर्दों, आचार-विचारों में घुल-मिल नहीं सकता, कभी नहीं। अड़चन है मेरे परिवार की विरासत, इससे चिपका मन—मन की एक खास बनावट। तुम अगर अंग्रेजी जानतीं तो इसे स्पष्ट करने के लिए कहता 'फ्रेम ऑफ माइन्ड'। जिससे दूर भागते हुए भी खून में जिसे मैं ढोता चल रहा हूँ। अपने पिता की वह दृष्टि, मेरी इन दोनों आँखों में समाई है। इसे झुठला कैसे सकता हूँ ! लोग कहते हैं, मेरे गले की आवाज भी उन जैसी ही है। मेरा मन उनका मन नहीं है। हो सकता है। फर्क अगर कुछ हो सकता है तो मन के विकास में। उसका रूप तो एक ही है। यही तो मेरा जन्मगत उत्तराधिकार है। धन-सम्पत्ति

नहीं, यह तो ठुकरायी जा सकती है। यह उत्तराधिकार मेरे खून, हाड़-मांस मेदा-मज्जा सब मे समाया हुआ है। जो इस काम मे अड़चन है—मेरी अपनी अन्तरात्मा।"

अपनी सरल सहज बातो की दौड मे यहाँ पहुँच कर अभिजीत ने सास ली बहूरानी एकदम सन्नाटे मे आ गयी। अभि ने जिस अड़चन की बात कही, उसकी वे कल्पना भी नही कर सकती। उसके मन की बहुत-सी बातों को जानते हुए भी मन का यह कोना उनकी आंखो से ओझल था। उसकी बातो को उन्होंने मान लिया हो सो बात भी नही, मगर वे विरोध भी नही कर सकीं। वे अतीत की दूरियो मे खो गयी। कितने सारे दिनो की कितनी सारी बातें मन मे कौंधने लगी। इस बंद्योपाध्याय-परिवार की जो परपरा रही है और जिसे अभि एक खास मन मानता है, शुरू से ही तो वह इसका विरोधी रहा है, जिसका 'भोग' भी उसे भोगना पड़ा है। एक लबे अर्से तक दूर-दूर रहा है। खुद को अलग हटाये रहा है। फिर भी वह मन आज इतना बडा होकर प्रकट हुआ।

अभिजीत ने कहा, "मुश्किल क्या है जानती हो? मुश्किल है यह तुम्हारा शभू चरण और उसके सगी-साथी। बस्ती के बारे मे आज कुछ भी किया गया तो वे सब से आगे आ खड़े होगें। इन लोगो की अपनी भाषा है, अपनी व्याकरण है। दरअसल वह उनका नही है, इस पार आकर उन्होंने राजनीतिवालों से यह सब सीखा है। वह कदापि कर्ण-प्रिय नही है—'यह हमे चाहिए—यह मिल जाये तो अच्छा हो'—ऐसे सहज भाव से न कह कर, वे कहगे—'यह है हमारी सोलह सूत्री मांग।" और यह कहने का उनका ढग इतना बेहूदा होगा कि क्या कहा जाये! हम कहगे—'आप से कुछ बाते करनी थीं!' उनकी भाषा होगी—'आप के सामने यह प्रस्ताव रखा गया।' अपने नायब कक्का की भौंहे सुनते ही ललाट पर चढ जायेगी। और मेरे पिता या दादा होते तो उनके तलवे का खून सर पर चढ जाता। और मेरा, लेकिन मुझे कही कुछ नही लगता! शान्त और सहज भाव से सब कुछ सुन लेता हूँ, मगर उनकी बातें उनकी बद मिजाजी, असगत मांगो की फेहरिस्त कब मेरी नशो मे जो खून बह रहा है उसे खौला नही दे यह कौन जानता है? इसलिये अपने ऊपर ही मुझे भरोसा नही है। मेरा विश्वास है कि किसी काम को उठाने के पहले जिस त्याग की जरूरत है, उसे लोग क्रोध कहते हैं और जो ग्रहणयोग्य है उसे कहा जाता है—निरपेक्षता। जिस सम्पत्ति पर उन लोगो ने जबरदस्ती अपना कब्जा किया है, वह मेरी है, उससे मुझे मोह है। कभी न कभी यह अहसास मुझे होगा ही। और जब भी होगा तब मेरी दोनो बाँहे शिथिल हो जायेगी। मैं उनकी भलाई चाहता हूँ भाभी। मगर चाहने और करने मे बडा फर्क होता है। यह काम मुझ से नही हो सकता। मैं करना भी चाहता हूँ लेकिन पीछे रह कर।"

"तो आगे कौन रहे?"

"ऐसा कोई, जो इन लोगो की रग-रग पहचानता हो जिस ववडर मे वे यहाँ

अभि ने कहा, "यह काम बहुत जटिल है। असली बात तो यह है कि इसके लिए कौन'बढ़े ?"

"और कौन ?" बिना हिचक महामाया ने उत्तर दिया, "तुम, तुम बढ़ो, यों आगे-पीछे लोगों की कमी नहीं रहेगी।

अभिजीत को याद आया कि दुर्गा मोहन ने भी यही कहा था। कोई भी यही कहेगा। अभि ने धीरे- धीरे कहा, "उहूँ, मुझसे नहीं होगा।"

"क्यों ? क्या फिर भागने की मर्जी है ? लाला अब भाग नहीं सकोगे। इस बार पैरों में बेड़ी डाल कर ही दम लूंगी मैं।"

यह कह कर बहूरानी होठों के भीतर मुस्कराईं। उन्होंने फौरन महसूस किया कि इस मजाक का देवर पर कोई असर नहीं पड़ा। जैसे उसने सुना ही नहीं। जिस प्रकार उदासीन होकर अभि ने यह कहा था—मुझसे नहीं होगा—उसी प्रकार उसने कहा, "देखो न, जैसे हैं नायब कक्का। उनकी तरह के काम के लोग कहाँ मिलेगें ? मगर इस मामले में वे भी कुछ नहीं कर सके। तभी तो वे खुद ही हटना चाहते हैं। मैं भी सोचता हूँ। अब रोकने में लाभ भी क्या है।"

'उनकी बात और है। जीवन भर सब कुछ वे जिस दृष्टि से देखते आये हैं, इस उम्र में उनमें परिवर्तन संभव नहीं है। और सबसे बड़ी बाधा तो यह है कि शरणार्थी लोगों ने उन्हें बहुत सताया है। उनका अपमान किया है, वह यह भूल जायें—?"

"जानता हूँ भाभी, उनकी परेशानी मैं खूब समझता हूँ। उन्हें मैं दोष नहीं देता। मेरे सामने भी तो दिक्कतें हैं जो उनकी उस परेशानी से ज्यादा महत्वपूर्ण हैं।"

बहूरानी अभि की उस दिक्कत का अन्दाज नहीं लगा सकती थीं। इसलिए उसको ताकती रहीं। अभिजीत बोला, "ठीक-ठीक यह तुम्हें समझाना मुश्किल है। हो सकता है तुम्हें सब कुछ सपना लगे। फिर भी सुनो—यह कोई रहस्य नहीं है। इसे मैं पग-पग पर अनुभव करता हूँ।…जो कुछ मैंने तुमसे कहा उसे सही रूप देना मेरे बूते का नहीं है। काम करने की दृष्टि से नहीं, भावना के कारण। मतलब इन लोगों से मुझे जितनी भी हमदर्दी क्यों न हो, इनमें उतर कर, इनके दुःख-दर्दों, आचार-विचारों में घुल-मिल नहीं सकता, कभी नहीं। अड़चन है मेरे परिवार की विरासत, इससे चिपका मन—मन की एक खास बनावट। तुम अगर अंग्रेजी जानतीं तो इसे स्पष्ट करने के लिए कहता 'फ्रेम ऑफ माइन्ड'। जिससे दूर भागते हुए भी खून में जिसे मैं ढोता चल रहा हूँ। अपने पिता की वह दृष्टि, मेरी इन दोनों आँखों में समाई है। इसे झुठला कैसे सकता हूँ ! लोग कहते हैं, मेरे गले की आवाज भी उन जैसी ही है। मेरा मन उनका मन नहीं है। हो सकता है। फर्क अगर कुछ हो सकता है तो मन के विकास में। उसका रूप तो एक ही है। यही तो मेरा जन्मगत उत्तराधिकार है। धन-सम्पत्ति

नहीं, यह तो ठुकरायी जा सकती है। यह उत्तराधिकार मेरे खून, हाड़-माँस मेदा-मज्जा सब मे समाया हुआ है। जो इस काम मे अड़चन है—मेरी अपनी अन्तरात्मा।"

अपनी सरल-सहज बातो की दौड़ मे यहाँ पहुँच कर अभिजीत ने सास ली बहूरानी एकदम सन्नाटे मे आ गयी। अभि ने जिस अड़चन की बात कही, उसकी वे कल्पना भी नहीं कर सकती। उसके मन की बहुत-सी बातों को जानते हुए भी मन का यह कोना उनकी आँखों से ओझल था। उसकी बातों को उन्होंने मान लिया हो सो बात भी नहीं, मगर वे विरोध भी नहीं कर सकी। वे अतीत की दूरियों मे खो गयी। कितने सारे दिनो की कितनी सारी बातें मन मे कौंधने लगी। इस बद्योपाध्याय-परिवार की जो परम्परा रही है और जिसे अभि एक खास मन मानता है, शुरु से ही तो वह इसका विरोधी रहा है, जिसका 'भोग' भी उसे भोगना पड़ा है। एक लबे अर्से तक दूर-दूर रहा है। खुद को अलग हटाये रहा है। फिर भी वह मन आज इतना बड़ा होकर प्रकट हुआ।

अभिजीत ने कहा, "मुश्किल क्या है जानती हो? मुश्किल है यह तुम्हारा शम्भू चरण और उसके सगी-साथी। बस्ती के बारे मे आज कुछ भी किया गया तो ये सब से आगे आ खड़े होगे। इन लोगों की अपनी भाषा है, अपनी व्याकरण है। दरअसल वह उनका नहीं है, इस पार आकर उन्होंने राजनीतिवालों से यह सब सीखा है। वह कदापि कर्ण-प्रिय नहीं है—'यह हमे चाहिए—यह मिल जाये तो अच्छा हो'—ऐसे सहज भाव से न कह कर, वे कहेगे—'यह है हमारी सोलह सूत्री माँग।" और यह कहने का उनका ढग इतना बेहूदा होगा कि क्या कहा जाये! हम कहेगे—'आप से कुछ बातें करनी थी!' उनकी भाषा होगी—'आप के सामने यह प्रस्ताव रखा गया।' अपने नायब कक्का की भौंहे सुनते ही ललाट पर चढ़ जायेगी। और मेरे पिता या दादा होते तो उनके तलवे का खून सर पर चढ़ जाता। और मेरा, लेकिन मुझे कहीं कुछ नहीं लगता! शान्त और सहज भाव से सब कुछ सुन लेता हूँ, मगर उनकी बातें उनकी बद मिजाजी, असगत माँगो की फेहरिश्त कब मेरी नसों मे जो खून बह रहा है उसे खौला नहीं दे यह कौन जानता है? इसलिये अपने ऊपर ही मुझे भरोसा नहीं है। मेरा विश्वास है कि किसी काम को उठाने के पहले जिस त्याग की जरूरत है, उसे लोग क्रोध कहते हैं और जो ग्रहणयोग्य है उसे कहा जाता है—निरपेक्षता। जिस सम्पत्ति पर उन लोगो ने जबरदस्ती अपना कब्जा किया है, वह मेरी है, उससे मुझे मोह है। कभी न कभी यह अहसास मुझे होगा ही। और जब भी होगा तब मेरी दोनो बाँहें शिथिल हो जायेगी। मैं उनकी भलाई चाहता हूँ भाभी। मगर चाहने और करने मे बड़ा फर्क होता है। यह काम मुझ से नहीं हो सकता। मैं करना भी चाहता हूँ लेकिन पीछे रह कर।"

"तो आगे कौन रहे?"

"ऐसा कोई, जो इन लोगो की रग-रग पहचानता हो, जिस ववडर मे वे यहाँ

ा गिरे हैं, उसे कम-से-कम उसने भी कुछ झेला हो। जो फेर-बदल इनकी जिन्दगी में आ उसे पूरे मन से महसूस कर सके।"

"कहाँ पाओगे ऐसे को ?"

"पाना होगा। एक उपाय है। तुम्हें बताऊँ। इसके पहले मास्टर साहब से इस बारे में बातें कर लेनी ठीक होगी। कितना बजा है अभी ?"

"बहुत। अभी तुम बाहर नहीं जा सकते। कल चले जाना।"

रात अधिक नहीं हुई थी फिर भी अभिजीत ने बहूरानी की बात मान ली। सवेरे उसने उन्हें बड़ा कष्ट पहुँचाया था, इसलिये अब और कष्ट देना नहीं चाहता।

महामाया रसोई की ओर जा रही थीं। अभिजीत ने टोक कर कहा, "अरे हाँ, यह तो मैं भूल ही गया। नायब कक्का के लिये कुछ पेंशन की व्यवस्था हो तो कैसा रहे ?"

"पेंशन ?"

"हाँ, यानी स्टेट से कुछ माहवार देना ! यह ठीक है कि यहाँ आज तक किसी को नहीं दिया गया। फिर भी इनकी बात अलग है।"

महामाया का चेहरा खुशी में खिल उठा। बोली, "बड़ा अच्छा हो, उन्हें जरूरत भी है। लड़का एक भी नहीं है, लड़कियाँ कई हैं। और कुछ बीघा जमीन, बस। इससे होगा भी क्या !"

"वे कहीं इन्कार तो नहीं करेंगे ? तुम उन्हें समझा कर कहना। यह तो दया की भीख नहीं है। यह उनका अधिकार है। उन्होंने जो दिया है, सारा जीवन, उसका साधारण-सा प्रतिकार !"

"जरूर कहूँगी।" आग्रहपूर्वक महामाया बोलीं।

६

काशी में जिस उस्ताद से अभिजीत संगीत सीखता था, उन्होंने कहा था, "जो दीक्षा लेते हैं, वे जैसे नित्य-कर्म करते हैं, रोज सवेरे या शाम को, कम-से-कम एक बार देव-अनुष्ठान में बैठ कर, बरामदे में या किसी शान्त कोने में, अपने इष्ट-देव की जय करते हैं, यह भी तुम्हारा वैसा ही नित्य-कर्म होना चाहिए। काम जितना भी हो, एक बार तानपूरा लेकर जरूर बैठोगे। इससे सिर्फ गला ही नहीं खुलेगा, बल्कि तुम्हारा मन बहुत से झंझटों से हट कर कुछ पल के लिये एकाग्र भी होगा। इसीलिये संगीत को साधना कहा गया है। यह भी एक तरह का व्यायाम है, तुम लोग जिसे एक्सरसाइज

कहा करते हो, सिर्फ गले का नही, उससे ज्यादा मन का।

वहाँ, जितने दिनो रहा, वह इस आदेश का पालन बराबर करता रहा। यहाँ वह कर नही पाता। उस्ताद जी के कहे अनुसार यहाँ मन एकाग्र होने के बजाय और भी भटका रहता है। और युक्ति या उपाय जो उन्होंने बताया था उसका पालन वह यहाँ कर ही नही पा रहा है।

अभि जिस दिन यहाँ आया था, उसके दूसरे ही दिन भोर मे उसके कमरे से तानपूरा की स्वर लहरी आयी तो बहूरानी को बडी खुशी हुई थी।

गाना-बजाना तो इस खानदान का पुश्तैनी रिवाज है। बीच के बहुत सारे बरसो मे उसकी यह धारा सूख-सी गयी थी। उसमे अब फिर क्षीण धारा नजर आयी। इसे कायम रखना होगा, ऐसा प्रयत्न करना होगा जिससे इसका विकास हो। मन ही मन यह सोच कर ही उन्होंने नायब जी से कह कर महफिल का आयोजन रखाया था। बुलाये गये पुराने उस्ताद, इस परिवार से जिनका इतने दिनो का घनिष्ट सपर्क रहा, जिनसे बहुत बार, बहुत से लोगो को सुख मिला है। उन दिनो की महफिल की महत्ता को लौटाना होगा ताकि वही वातावरण लौट सके, यही उनका उद्देश्य था। इसके बाद जो कुछ महफिल मे हुआ वह ठीक नही हुआ। तभी से महामाया न गाने-बजाने के बारे मे फिर कोई उत्साह नही दिखाया। कभी कुछ कहते हुए अभिजीत ने कहा था, "गाने-बजाने की एक लौकिकता होती है, जिस की उपेक्षा नही की जा सकती। यह कुछ ही, रसग्राहियों मे सिमटा रहे, यह असभव है, और अवाछनीय भी। मामूली आदमी को भी उसका हिस्सा देना होगा।"

महामाया ने इसका विरोध किया था, "मामूली आदमियों के लिये मामूली चीजें हैं। यह ऊँचे दर्जे की राग-रागिनी वे क्या समझें? यह सब उन्हे बुला-बुला कर सुनाने का मतलब है—उल्लू को मोती चुगाना।"

इस बात मे कुछ तल्खी थी, और इसकी ही आशा भी थी। बहूरानी जिस खानदान की बहू हैं और कि छुटपन से जिस विचार मे पली-पुसी, यह स्वर उसी खानदान का था, सिर्फ उनका अपना नही। अभिजीत ने इस बात को आगे नही बढाया।

हो सकता है, उसने सोचा हो कि उनका यह कहना निराधार नही है। यह तो मानना ही होगा, सब कुछ सब के लिय नही हाता। पर यह भी क्या कर मान लिया जाय, मानव समाज का एक बडा हिस्सा एक महत् वस्तु से वचित रह जाये? ऊँचे दर्जे का सगीत, नीचे दर्जे मे उतर आये, यह कोई नही चाहता, लेकिन ऐसा कुछ क्या नही किया जा सकता, जिससे कि नीचे दर्जे के लोग भी उसका उपभोग कर सकें? अगर ऐसा नही किया गया तो धीरे-धीरे वह विलुप्त हो जायेगा। कुछ थोडे से लोग उसे अपनी बाँहो पर ऊँचा उठाये नही रख सकते, अगर कुछ और लोगो की बाँहे न मिलें।

समय भी बदल गया है। यह युग बाँहो को बाँह देने का है।

उनके तर्क से बिल्कुल ही दूसरे प्रकार की एक छोटी-सी घटना अभिजीत को आयी ।

अभिजीत उस समय छोटा-सा था । घर में कोई बड़ा समारोह मनाया जा रहा ...दवी की व्रत-प्रतिष्ठा या ऐसा ही कुछ । बहुत से लोग निमंत्रित थे, विभिन्न तरह ...ग । ब्राह्मण, ऊँचे वर्ग के लोग तो थे ही, उनके साथ जो नीचे तपके के लोग थे, ...ी कम नहीं थे । जमींदार के घर होने वाले सभी काम-काजों में वे बुलाये जाते थे । ...वार भी थे निमंत्रित थे । बहुत बड़ा समारोह था । अभि अपनी लड़कपन की उत्सुक ...ांखों से सब कुछ घूम-घूम कर देख रहा था । अचानक उसकी नजर दही लाने वाले ...बँहगियों पर पड़ी । वह एक दृश्य था । बँहगी कन्धे पर लिये हुए कतार से लोग चले आ ...रहे थे, बँहगी के दोनों तरफ परातों में दही की मटकी सजी थी । एक साथ सब हिल ...डुल रहे थे और बँहगिये भी उसी की लय में नाचते हुए आ रहे थे ।

नौकरों में एक नौकर दही और मिठाइयों की देख-रेख के लिये मुकर्रर था । उसका नाम था—राजेन घोष, बंद्योपाध्याय परिवार का बँधा ग्वाला । दही के जुगाड़ का भार उस पर ही था । वही चुन-चुन कर मटकियों को दो भागों में बाँट रहा था ।

अभि ने पूछा, "दो भागों में क्यों बाँट कर रख रहे हो ?"

"दही एक नम्बर, दो नम्बर का है, दो किस्म का है ।" उस नौकर ने उत्तर दिया ।

"दो किस्म का क्यों ?"

"छोटे-बड़े सभी को क्या एक ही किस्म की चीज दी जा सकती है, छोटे बाबू ? इधर को ये हैं बढ़िया किस्म का दही । यह ब्राह्मणों और ऊँचे लोगों के लिये है, और यह है फालतू लोगों के लिये ।"

"ठीक नहीं है !"

"क्यों ?" अब राजेन घोष ने कहा, "मगर हाँ, उसके मुकाबिले का नहीं है ...इतर किसान ही न खायेंगे !"

दही की भाँति खाने में भी श्रेणी-भेद है । 'छोटे-बड़े' सभी के लिये ए... नहीं ।

इसे इसी प्रकार महामाया को सुनाये या नहीं, अभिजीत यही सोच रहा ... अन्त में यह सोच कर उसने सुनाया ही नहीं कि जो मजा उसे इसमें मिल रहा ... पाता है वे न पा सकें । दोनों की दृष्टि अलग-अलग हैं । उनके दिल को कहीं ... लगे ।

बहुत दिनों के बाद उस दिन जाने क्या सोच कर भोर में ही ... ...बैठ गया । महामाया उससे पहले ही जग जाती हैं । लेकिन उस ...

नहीं, नींद टूट जाने पर भी वे पड़ी रहीं। पिछली रात अमि ने जो कुछ कहा था उससे अमि के मन की एक नयी दिशा का उद्घाटन उनके सामने हुआ था। बहुत देर तक वे बातें उनके मन को उद्वेलित किये थीं। कब उन्हें नींद आ गयी थी यह उन्हें भी नहीं मालूम। सबेरे जब नींद टूटी तो उन्हीं बातों में वे उलझ गयीं।

शरणार्थियों के बारे में अमिजीत जो कुछ सोचता-विचारता रहा है, वह इतने दिनों बाद स्पष्ट हुआ। उसके पिता या दादा जीवित होते तो उन्हें भी यह चिन्ता होती लेकिन उसका रूप दूसरा होता। वे सोचते—कैसे इन्हें ग्रस्त किया जाय। बहूरानी यही सोच सकती थीं। इतना ही वह सहज रूप से सोच सकती थीं। इसके आगे का सोचना उनके लिये दुर्बोध था। अमिजीत का मन है, कर्तव्य-ज्ञान है, उमगें हैं, तो इनके लिये दर्द भी कैसे न हो। फिर भी कुछ करना चाह कर भी करना नहीं चाहता। उसने जिस रुकावट की चर्चा की थी वही उनके लिये एक आश्चर्य था।

कुछ शंकाएँ भी होती हैं। कौन जाने यह उसका यहाँ से भागने का एक बहाना हो। तानपूरा और अपने नौकर को संग लेकर फिर कहीं काशी जा न बैठे, जिस दिन झोंक चढ़ी कि उसी दिन कहीं निकल न जाये। जा भी सकता है। ये कामकाज ही तो राह रोके खड़े हैं। किसी दूसरे के कन्धे पर इन्हें सवार कराने के बाद बस छुट्टी। जब आया था तब उसने कहा था—सिर्फ तुम्हारे लिये ही चला आया मामी। तुम्हारा आदेश क्या ठुकरा सकता हूँ?

बहूरानी ने जो पत्र लिखा था, उसमें उनकी कोई चर्चा न रहने पर भी अमिजीत यह जानता था और यहाँ आने पर और भी जान गया है कि इस बस्ती की समस्याओं की वजह से ही उन्होंने इसे यहाँ बुलाया है। उसका कोई रास्ता निकलते ही वह चलता बनेगा।

असल में क्या महामाया ने उसे सिर्फ इसीलिये बुलाया था? और वह भी क्या इसीलिये चला आया?

अलाप कानों में पड़ते ही विचार—क्रम टूट गया। महामाया फौरन उठ बैठीं। और दिनों के बजाय आज बहुत देर हो गयी थी।

दरवाजा खोल कर बाहर आ खड़ी हुईं। इसके पहले भी उन्हें लगा था और आज और भी प्रमाणित हो गया कि अमिजीत को अपने पिता का सधा हुआ गला मिला है। वह स्वयं ही कल ऐसा कह भी रहा था।

महामाया बहुत देर तक खड़ी-खड़ी सुनती रहीं। उन्हें याद आया कि बरसों पहले ससुरजी भी इसी कमरे में बैठ कर ऐसे ही अलाप करते थे। पक्के रागों पर उनका अच्छा दखल था। वे कभी-कभी इसके बारे में चर्चा भी किया करते थे। सासुजी की मौत के बाद से उनका कंठ स्वर सुनाई नहीं पड़ा। गाना ही नहीं, बात-चीत भी बहुत कम

ही करते थे। खडाऊँ की आवाज से यह अन्दाज लगाना पड़ता था—कब वह आ रहे हैं, कब कहाँ जा रहे हैं।

इन्हीं गुत्थियों में उलझते-उलझते पता नहीं कैसे बहूरानी ने मन-ही-मन यह संकल्प किया कि अभिजीत जाना चाहेगा, तो भी उसे जाने नहीं दिया जायेगा। और यह वे ही कर सकती हैं। वह जिसे जो काम सौंपना चाहता है सौंपे। मगर उसे भी रहना होगा यहीं।

दिन चढ़ते ही अभिजीत आया, बोला, "मैं बाहर हो आऊँ भाभी! मास्टर साहब के पास जाना है।"

महामाया जानती थीं, । कल रात ही वह जाना चाहता था, उसने ही रोक दिया था। कहा, "देर मत करना।"

दुर्गा मोहन जी से आज से पहले जितनी चर्चा हो चुकी थी, वह कुछ और आगे बढ़ी। अपने आगे जो रुकावट, जो असमर्थता अभिजीत अन्दर-ही-अन्दर महसूस कर रहा था, बहूरानी से जो कुछ उसने कहा था, वही वैसे ही जरा भाव-भाषा बदल कर मास्टर जी के आगे भी उसने रखा। दुर्गा मोहन जी कल यह सोच नहीं सके थे, आज जब सुना तब अचरज में डूब गये। अभिजीत को वे जानते हैं। उसकी मानसिकता से भी वे परिचित हैं। कोई और होता तो क्या करता यह सवाल अलग है। अभि के लिये यही स्वाभाविक है। संस्कार के आगे तर्क की दाल नहीं गलती। यानी इस पर तर्क करना व्यर्थ है। ऐसी दशा में उसे मान कर ही आगे बढ़ा जा सकता था।

जिम्मा कोई भी ले। सबसे पहले जरूरी है—विचार पूर्ण एक योजना। और जिसके लिये शुरू से ही उसमें उनका हाथ होना। अगर ऐसा नहीं हुआ तो वह चाहे जितना सही, उदार और कल्याणप्रद क्यों न हो, उसके पीछे जितनी भी शुभेच्छा हो, उस पर शुरू से ही वे संदेही रहेंगे और हर ओर से रुकावटें आयेंगी। इसके बाद एक दिन सब छिन्न-भिन्न होना नजर आयेगा। धन और श्रम दोनों ही बेकार हो जायेगा।

इस विषय में दुर्गा मोहन जी का अनुभव अभिजीत से कहीं अधिक है। वे एक के बाद एक सरकारी प्रयत्नों को फेल होते देख चुके हैं। उसका प्रमुख कारण था, सब कुछ ऊपर से इन पर लाद दिया जाना। लोगों ने उनसे हाथ नहीं मिलाया, सिर्फ छिद्रान्वेषण करते रहे और उन छेदों से बंडल के बंडल नोट निकलते गये थे।

"सरकार यह नुकसान सह सकती है।" दुर्गा मोहन अभिजीत को कई उदाहरण देकर समझा रहे थे, "क्योंकि सरकारी रकम, यानी जिसे हम लोग गवर्नमेंट रिसोर्स कहा करते हैं, उसका कोई अन्त नहीं है, जो कुछ जायेगा, वह तुम्हारी हमारी जेबों से निकाल कर पूरा कर लिया जायेगा। लेकिन तुम्हारा भला कितना क्या रिसोर्स है?

मतलब तुम जो कहते हो, वही मैं भी कहता हूँ। शुरू से ही उनके उस नेता को—क्या नाम है उसका ?"

अभिजीत ने मुस्करा कर कहा, "शम्भूचरण।"

"हाँ, इस शंभूचरण को साथ रखना होगा। उसे छोड़ कर कुछ किया नही जा सकता।"

"इसके पहले अपनी ओर का भी एक शंभूचरण चाहिए।"

"यही तो संकट है।" दुर्गा मोहन ने गर्दन हिला कर कहा, "तुम जैसा आदमी ढूँढ रहे हो, वैसा चटपट मिल सकेगा, ऐसा लगता नही।"

"आप का दायरा तो कोई छोटा नही है। उसमे अगर कोई—।"

"एक आदमी के विषय मे मैं सोच रहा था। लड़का बहुत सहृदय है। इसी इलाके मे उसका घर है। उनकी समस्याएँ वह समझ सकता है, और उसे सहानुभूति-पूर्वक निभा भी सकता है।"

"हम भी ऐसे को ही ढूँढ रहे हैं। आप उन्हे मिलने के लिये पत्र लिख दीजिये। कहाँ रहते हैं वे ?"

"अभी तो कलकत्ते मे ही है ?"

"तब तो दो-चार दिनो मे ही आ सकते हैं।"

"क्यो नही ! पर मैं कुछ और ही सोच रहा था अभी ! अभी तुमने कहा न, हमें भी एक शम्भूचरण चाहिए, यह बहुत सच है, जबकि तुमने वह सोच कर नही कहा और शम्भूचरण भी ठीक उस स्तर का आदमी नही है। उनकी मुसीबत पर ही तुम्हारी नजर जाती रही है। तुम्हारे लिये यह स्वाभाविक भी है। पर हमलोग जो इन लोगों को बहुत दिनो से देखते आ रहे हैं, वे जानते हैं, उनके बीच कुछ ऐसे लोग भी हैं, जिनके लिये दुःख-मुसीबत एक तरह से फायदा उठाने का जरिया है। जिसके बल पर वे ऐसा कोई दुष्कर्म नही जो न करते हो। ऊपर से वे बहुत अच्छे हैं, जैसे कुछ जानते ही नही, पर भीतर से एक नम्बर के कमीने है, ठग, जुआचोर, फरेबी। मतलब अपने आदमी का भला होना ही पर्याप्त नही, उसे चालाक-चतुर भी होना होगा, जिससे उनके सग ताल-मेल बैठा सके। इसलिए मेरा कहना था, कि जब तुम काम दे रहे हो तो ठोक-बजा कर उपयुक्त का चुनाव करने मे क्यो चूको ?"

"आपकी बात समझ मे आयी। पर जितना सम्भव हो काम उतना ही चुपचाप हो। और फिर यह कोई ऐसा काम तो है नही कि जिसके लिये शुरू मे ही ढोल पीटी जाये—।"

"मैं भी यही सोचता हूँ। बिना ढोल पीटे क्या किया जा सकता है, इस पर सोचना होगा। क्यो नही हम लोग और भी विचार करे, तुम भी ढूँढो। जरूरत होगी तो अखबारो मे विज्ञापन भी दिया जायेगा। क्या ख्याल है ?"

"आप जैसा सोचिये ।" इतना कह कर कलाई पर बँधी घड़ी देखते हुए आग-
ला, "आज आज्ञा दीजिये । बहूरानी का जल्दी लौटने का आदेश है ।"

दुर्गा मोहन ने हँसते हुए सिर हिलाया, "मुझे वे पहचानी जो हैं । एक तो
मास्टर ऊपर से बूढ़ा, जो बातों के सिवा और कर क्या सकता है । ऐसे आदमी
हज में छुटकारा नहीं मिलता । इसलिये उन्होंने पहले से ही सावधान कर दिया ।"

"मगर उनका ख्याल कुछ और ही है ।"

"क्या ?"

"मैं आकर आपके आराम में दखल पहुँचाता हूँ, मैं आपके नियमित नियमों में
ावा पहुँचाता हूँ और ऊल-जलूल कामों के लिये विवश करता हूँ ।"

"अच्छा ऐसा ? उन्हें मेरा नमस्कार कहना और कहना तीस वर्षों तक एक
क्रम में नियमों का जुआ ढोते-ढोते दोनों कंधों में घट्टा पड़ गया है । नियम की मामूली
अवहेलना से कुछ आता-जाता नहीं । बल्कि यह अच्छा ही लगता है । मगर—"

गर्दन झुका कर दरवाजे से अन्दर की ओर चकित होकर देखते हुए बोले, "जैसे
गार्जियन के अण्डर में मैं हूँ कि बस चलना-फिरना, उठना-बैठना सब घड़ी की सुई के
अनुसार—"

आवाज दबी होने पर भी यह बात जिसके लिये कही गयी थी वहाँ तक पहुँच
गयी । साथ ही ओट से तीखी आवाज आयी, "कौन कहता है तुम्हें कि घड़ी के साथ
चलो ? जो मन चाहे वह करो ।"

दूसरे ही क्षण आवाज और निकट से आयी । जिसका स्वर बिल्कुल बदल
हुआ था, "बाबू जी !"

"क्या है बेटी ।"

"अमि भइया से कह दो कि कल दोपहर को यहीं भोजन करें ।"

"कल क्या है ?"

"है क्या ? यों ही ।"

"मगर बिना बहूरानी को बताये—"

"यह चिन्ता आप न कीजिए । मैं उनसे ठीक कर लूँगी ।"

"फिर बात क्या है । अमि, तुम स्नान कब करते हो ?"

"सबेरे ही । काशी से ही मेरी यह आदत है ।"

"तो दस बजे के पहले ही चले आना ।"

अन्दर से कहा गया, "लेकिन इतने सबेरे मेरी रसोई नहीं तैयार होगी ।"

"अरे भई, रसोई तुम जब इच्छा हो तब बनाओ । तुम क्या समझती हो
लोग बेकाम के है ? बहुत काम हैं हम लोगों के पास, क्यों अमि ?"

अभि सिर्फ मुस्कराया। इस बार अन्दर से कोई उत्तर नहीं आया फिर भी इन दोनों को यह समझने में जरा दिक्कत नहीं हुई कि कमरे के अन्दर भी एक हल्की हँसी तैर रही है। जिसका अभिप्राय साफ है कि 'तुम लोग कितने काम के हो यह किसी से छिपा नहीं है।'

अभि उठ खड़ा हुआ। इसी समय बाहर से अपरिचित गले की आवाज आयी, "मास्टर साहब घर मे है ?"

"कौन ?" दुर्गा मोहन जी ने पूछा।

"जी मैं हूँ, शम्भूचरण सरकार, शरणार्थी बस्ती से आ रहा हूँ।"

दुर्गा मोहन जी दरवाजे पर आ खड़े हुए, "आइये।"

नमस्कार करते हुए शम्भूचरण ने आजिजी से कहा, "आपको कष्ट देने चला आया।"

"अरे नहीं-नहीं कष्ट की क्या बात है।"

अन्दर आते ही अभिजीत के सामने पड़ते ही शम्भूचरण क्षण भर के लिये हतप्रभ हो गया। फिर हँसते हुए उसे भी उसने नमस्कार किया।

अभिजीत ने नमस्कार का उत्तर देते हुए कहा, "अच्छे हैं न !"

"जी हाँ !"

उधर की दीवाल से सटी दो कुर्सियाँ पड़ी थी। उधर ही सकेत कर दुर्गा मोहन ने कहा, "बैठिये।"

शम्भू कुछ घबराते हुए बोला, 'आप लोग बाते कर रहे थे, तो मैं फिर कभी—"

दुर्गा मोहन बीच मे ही बोल उठे, "बैठिये आप ! हमलोग यो ही बैठे बातें कर रहे थे।"

अभिजीत ने कहा, "मैं तो जा रहा था, जा रहा हूँ।" इतना कह कर वह बाहर निकल गया। दुर्गा मोहन उसे बगीचा के गेट तक छोड़कर लौट आये बोले, "तो बताइये शम्भू बाबू क्या हाल है।"

"बताता हूँ, इसके पहले आप से एक विनती है मास्टर जी ?"

"कहिये।"

"यह बाबू हटाना होगा आपको। अब वह हमलोगो को शोभा नहीं देता।"

"क्यो ?"

"हम क्या है, कहाँ आ खड़े हुए हैं, कैसे हैं, कुछ भी तो आप से छिपा नहीं है।"

"यह ठीक है, कि हम आपलोगो को और आपकी हालत भी जानते हैं। अगर यही बाबू नहीं कहलाने का कारण है, तो हम आप से सहमत नहीं हो सकते।",

हमलोग

...भूचरण ने तर्क रखा, "बाबू हम कहते किसे हैं ? जो भद्र हैं। हमलोग ... कपड़े-लत्ते, काम-काज में कहीं से भी 'भद्र' हैं क्या ?"

... यानी आप कहना चाहते हैं कि इंसान जब संकट में पड़ जाता है, तब वह ... रह जाता। लेकिन मैं ऐसा नहीं मानता। मेरे पास भद्र-अभद्र की कसौटी ...र ही है जिस पर आपने जो कुछ गिनाया उसमें से एक भी नहीं कसा जा ...। यह बिल्कुल अन्तर की चीज है। मैं उसे ही भद्र समझता हूँ जिसका मन ... आचरण भद्र है। वह क्या पहनता है, वह कैसे खाता है, कैसा दीखता है—यह ... बकवास है।"

शम्भूचरण के चेहरे पर विविधापूर्ण हँसी काँप गयी। बोला, "आप कुछ ख्याल ... करें। यह सब आपकी किताबी बातें हैं। दरअसल आदमी को बाहर से ही देख कर ...ऊँच-नीच मानते हैं। इस देश में जब से आया हूँ तब से खास तौर से यह मानने ... लगा हूँ।"

"क्यों मानने लगे ?"

"यहाँ के लोगों का जो व्यवहार देखा उससे।"

"वे क्या आपलोगों से कोई बुरा सलूक करते हैं ?"

"ठीक ऐसा कुछ नहीं कहा जा सकता पर ये इस आरोपित संकट को जिस निगाह से देखते हैं, उससे तो कुछ छिपा नहीं है—साफ है।"

दुर्गा मोहन जी ने उत्तर फौरन नहीं दिया। कुछ क्षण आँखें जमीन से गड़ाये रहे। फिर गर्दन उठा कर बोले, "आपकी बातें मैं पूरी तौर पर मानने को तैयार नहीं हूँ शम्भू बाबू। सीमा के उस पार से एकाएक इतने सारे लोगों के एक संग आने पर यहाँ के लोग खुशी नहीं हुए, यह ठीक है। परन्तु इसका मतलब यह कदापि नहीं है कि आपलोग जो यहाँ आये या आने के लिये विवश हो गये, उनको यहाँ के लोग महसूस नहीं करते, या उनसे कोई सहानुभूति नहीं रखते, ऐसा सोचा नहीं जा सकता। ... नाराज हैं, यह ठीक है पर आप लोगों से नहीं। जिस कारण से, जिनकी गलती से य... बेअक्ली से इतना भयानक उलट-पलट हुआ, उनसे। और वे तो पकड़ में आते ही नह... न ! इसलिये सब कुछ आप लोगों पर जा पड़ा। इसे घृणा या ईर्ष्या नहीं कहा ... सकता।"

इन बातों का कोई असर शम्भूचरण के मन पर पड़ा, ऐसा लगा नहीं। ... सीधा कहा, "यह सब आपके या आपके जैसे दो चार लोगों के मन की बात हो ... है पर औरों का ख्याल कुछ और ही है। वे सोचते हैं, कैसे और कब यह पाप ... ताकत होती तो अब तक टाल भी देते। मन का कर नहीं पाते, इसलिये गुस्... पर दिन उनका बढ़ता जा रहा है।"

"यह आप अपने गुस्से की बात कह रहे हैं, शम्भू बाबू, धीर-गम्भीर स्वर मे दुर्गा मोहन जी ने कहा, "अगर सही नजरिये से इस मामले को गहराई मे उतर कर देखें तो आप अपनी गलती महसूस करेंगे। मान लीजिये, आप एक खाते-पीते लोग हैं। दस लोगों को रोटी खिला कर खाने वाले। जो आमदनी है उससे किसी तरह काम चलता है। बिना कोई खबर दिये अचानक एक दिन छ-सात हित-नात आ गये। आपके घर मे जो कुछ है चावल, दाल, तेल, नमक सब दो दिनो मे खत्म हो गया, घर में उठने-बैठने, खाने-बिछाने की परेशानी नजर आयी। परिवार में जो सहजता थी वह अब नही रही। आपको मालूम हुआ आने वाला दो-चार दिनों के लिये नही आया। कोई चारा नहीं था इसलिये आप के घर आ धमके। मान लीजिये उनका बाद मे घर-दरवाजा सब कुछ बह गया है, या आँधी मे महरा गया है। सब कुछ जानते हुए भी आप या घर के लोग परेशानियाँ छिपा नहीं पा रहे हैं। आप लोगो के बात-व्यवहार से सब प्रकट हो जाता है। हित-नात सोचते हैं आप पर वे बोझ हैं, आप बहुत स्वार्थी हैं। मगर यह बात नही है। वे आपके परिवार से अच्छा व्यवहार नही पा रहे हैं, जिसकी तह मे हैं अर्थ-नीति का सिद्धान्त—आवश्यकता के अनुसार साधन का अभाव। जो है उसमे पूरा नही पडता। यह समस्या तो कोई आज की नहीं है, सदा की है। सिर्फ इसी देश की नहीं, सारी दुनिया की है। हर देश और युग मे आदमी का आदमी से विरोध के मूल मे यही बात निहित है।"

दुर्गा मोहन जी के चुप होते ही शम्भूचरण ने कहा, "मगर हम लोग तो इनके सहारे या इनकी थाली मे हिस्सा नही बँटाने आये। हम अपने पैरो पर खड़ा होना चाहते हैं, कोशिशें भी कम नहीं की।"

"बिल्कुल ठीक," साथ ही साथ मास्टर जी ने कहा, "सबसे पहले उन्हें यह महसूस कराना होगा, यह विश्वास देना होगा उन्हे जो यहाँ के बाशिन्दे हैं, कि आप लोग बाहर के नही हैं। जैसा कि आपने अभी थोडी देर पहले ही कहा कि यहाँ आने के बाद यह और भी अधिक आप समझ रहे है, यह वहम त्यागना होगा। यह कोई अलग देश नही है। यह देश जिस प्रकार हमारा है, उसी प्रकार आपका भी है। हमेशा से रहा है, आज भी है। जरूरत है इसके लिये मन बनाना, इसके बाद आप देखेंगे कि कोई समस्या हीं नही रह जाती।

शम्भू चुप बैठा रहा। मास्टर जी की अन्तिम बातें उसके मन को छू सकी हैं, ऐसा लगा। कुछ क्षण बाद जब उसने चुप्पी तोडी तो पहले जैसी तर्क की आवाज मे तल्खी नही थी। धीरे-धीरे कहा, "इसी कोशिश मे हम लगे हैं मास्टर जी। बूढे सभी उस पार जो कुछ छोड आये हैं उसी का सपना देख रहे है। उन्हे बदलने मे समय लगेगा। अपनी धरती का मोह बडा विचित्र होता है। और मैं तो अपनी उम्र के और अपने से छोटो को यह समझाने मे लगा हूँ कि भाई 'शरणार्थी' शब्द तुम लोग मूल

जाओ। लोग कहें, कहने दो, हम नहीं मानेंगे। हम रिफ्यूजी हैं, हम शरणार्थी हैं, हम झाऊ-लाऊ हैं—ऐसे ही हमें कितना क्या कहा जाता है। इस कहने में जो अपमान निहित है। सब को भूलो। लेकिन आप जरूर यह समझ रहे होंगे कि यह एकतरफा मामला नहीं है। यह मान लें कि अपनी जर-जमीन से निकाले हुए होते हुए भी देश से निकाले नहीं गये, यह माटी भी हमारी ही माटी है, यहाँ हमारा भी जोर है, अधिकार है। आप लोग भी अगर यह नहीं मान लें, हाथ बढ़ा कर न कहें—आओ तुम लोग, तो सिर्फ मन बना कर भी हम क्या करें? इधर से बिना भरोसा मिले मन बने भी कैसे? और ऐसा भरोसा क्या हम लोगों को मिला है मास्टर जी? आप ही कहिए।"

दुर्गा मोहन जी मन ही मन कुछ सोचते रहे। अगर भरोसा नहीं मिला तो इसके लिये शम्भूचरण भी कम जिम्मेदार नहीं है। उन्होंने इसे प्रकट नहीं किया। ऐसी गहन परिस्थिति में कटु सत्य कहने से गलतफहमियों के बढ़ने की सम्भावना होती है। तर्क का समय यह नहीं है। ऐसी बातें सिर्फ सुनने की होती है विरोध करने की नहीं।

इसके अलावा शम्भूचरण की बातों में जो अभियोग है उसे यों ही टाला भी नहीं जा सकता। विदेशियों के द्वारा सीमा निर्धारण की गलत रेखाओं के उस पार से उत्पीड़ित इन अभागों को इस पार के लोगों ने अपनत्व नहीं दिया, इस कटु सत्य को कौन स्वीकारेगा? मन ही मन यदि स्वीकार भी लिया हो, हो सकता है वह प्रकट न हुआ हो। इसकी कोई वजह तो होगी ही। कुछ देर पहले शम्भू को दुर्गा मोहन जी ने यही समझाने का प्रयत्न तो किया था। उनके कथन में सत्यता जितनी भी हो मगर इस समय उसे उपलब्ध करने की मानसिकता की आशा व्यर्थ है। यह सोच कर वे चुप-चाप बैठे रहे।

शम्भू पल भर रुक कर बोला, "बंधोपाध्याय परिवार की ही बात लीजिए, हम लोग उनकी ड्योढ़ी में झाँकने तक नहीं जाते, उनका कुछ बिगाड़ा तक नहीं, कहीं ठौर नहीं मिला, तभी इस झंखाड़ मैदान में आ बसे। हमें उजाड़ने का नायब जी ने क्या-क्या उपाय नहीं किया? सब कुछ तो आप जानते ही हैं, अपनी आँखों देखते रहे हैं।"

"नायब को दोष देना उचित नहीं होगा।" दुर्गा मोहन ने धीमे से कहा, "मालिक के स्वार्थों की रक्षा करना उनका कर्तव्य है, इसके लिये उन्हें हर माह वेतन दिया जाता है। उनके स्वार्थ में धक्का लगते देख जो उन्हें करना चाहिए, वही उन्होंने किया।"

"लेकिन तरीका क्या यही था? जरा सोचा भी नहीं कि हम लोग कितनी बुरी हालत में फंसे हैं। भागो, अभी भागो, यहाँ से निकलो।"

दुर्गा मोहन इस प्रसंग में भरसक उतरना नहीं चाहते थे। बोले, "खैर आप लोग तो बैठे ही हैं, भागे नहीं। अपना घर-द्वार बना लिया, अब उस गड़े मुर्दे को उखाड़ने से क्या फायदा ?"

शम्भू ने बिना किसी हिचक के मंजूर किया, "सो आप ठीक कहते हैं। और यह बातें करने आपके पास हम आये भी नहीं। बातों में ही बात निकल गयी।"

क्षण भर रुक कर वह पुनः बोला, "जिस काम के लिये आये हैं, वह इससे अलग है। अलग कहूँ भी कैसे ? हमारे सामने तो एक ही सवाल है—किसी तरह जीना। सिर पर छप्पर, तन पर कपड़ा, पेट में रोटी। इसी की कोई व्यवस्था कैसे हो ? इसमें अगर आप कुछ मदद कर सकें तो—"

वाक्य अधूरा छोड़ कर शम्भूचरण मास्टर जी का मुँह ताकता रहा। वे भी पलकें उभार कर आश्चर्य से बोले, "मैं ?"

"हाँ मास्टर जी। इसीलिये मैं आपके पास आया हूँ। कोई अपनी इच्छा से नहीं, हम लोगों की कमेटी ने मुझे भेजा है।"

दुर्गा मोहन की आँखों में आश्चर्य के साथ ही सदेह भी झलका। इस शरणार्थी बस्ती के नेता की क्या मंशा है ! ये लोग तो आज इस गाँव में नहीं आये। इतने दिनों बाद एकाएक हमारी मदद की जरूरत इन्हें क्यों पड़ी ! यह सब ठीक-ठीक उनकी समझ में नहीं आया। बोले, "हम आप के लिये क्या कर सकते हैं ?"

शम्भू बिना रुके बोला, "हो सकता है आज के पहले आप कोशिश करते भी तो सफलता शायद मिलती नहीं, लेकिन अब निश्चित है। जिनकी मुट्ठी में हम लोगों का भविष्य है, वे आपकी कोई भी बात टाल नहीं सकते। आज इसका और भी विश्वास हो गया।"

"आप का मतलब अभिजीत से है ?"

"जी।"

दुर्गा मोहन कुछ कहने जा रहे थे कि अन्दर से पुकार हुई—"बाबू जी !" इस पुकार में निहित अर्थ उनका जाना हुआ है। टेबुल पर एक टाइमपीस घड़ी थी। उसकी ओर देख कर फौरन उन्होंने कहा, "आया, अभी आया बेटी !"

७

सवेरे-सवेरे हवाखोरी करने की आदत दुर्गा मोहन जी की जवानी की लत है। जब स्कूल जाते थे तब बहुत तड़के सो कर उठ जाते थे और पड़ोस के लोगों के जगने

के पहले ही घूम कर लौट आते थे। स्कूल की तैयारी के पहले बहुत सारा काम पड़ा रहता था। उनमें प्रमुख था लड़कों के होम टास्क की कापियां जांचनी। उनके जमाने में मास्टर जी ही अपने आवश्यक कामों में इसे भी एक मानते थे।

बाद में विद्यार्थी और मास्टर दोनों को ही इस काम से मुक्ति मिल गयी थी। आज भी टास्क लडके करते हैं मगर पॉलिटिकल टास्क। यह उन्हें मिलता है राजनीतिक नेताओं से। वे ही इस युग के शिक्षक हैं। छात्र-छात्राएँ अपने पाड़ा के अड्डे पर इसे तैयार करते हैं और नेताओं की जरूरत के अनुसार वे परीक्षा देते हैं, नारे लगा कर, बम चला कर, जलूस सजा कर, मनूमेंट में होने वाली जन-सभाओं में या कभी-कभी पुलिस से ईंट-युद्ध करके।

वे कोरे मास्टर होते हैं जो पॉलिटिक्स का पाठ नहीं लेते, इस परिदृश्य के मूक सर्शक मात्र।

होमटास्क और परीक्षा की कापियाँ जाँचने के अलावे भी दुर्गा मोहन जी को बहुत सारा काम करना पड़ता था। तरह-तरह के लोग उनसे मिलने आते। केवल पढ़ाई-लिखाई या स्कूल के काम से ही नहीं, इस दायरे से भी अलग दायरे की इनके सुझाव-विचार या प्रवचन की जरूरत होती थी। गाँवों में मास्टर सब से अधिक निर्भर-शील और तटस्थ व्यक्ति होता है; इसी निगाह से वे देखे जाते थे। अपढ़ और कम पढ़े-लिखे लोगों के मन में भी उन पर श्रद्धा होती थी और जिस तरह हेड मास्टर अपने अड़ोस-पड़ोस में अधिक विद्वान होते हैं, इसलिये उन्हें भी वे श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे।

उस समय भी राजनीति थी, सामाजिक दल-बल था। मगर हेडमास्टर इन सभी से ऊपर समझे जाते थे। इसलिये सभी दलों की आस्था इन पर थी और सभी दलों के ऊपर उनका प्रभाव भी समान रूप से था। साधारणतः जरा कड़े स्वभाव के वे होते थे। स्कूल के डिस्प्लीन की रक्षा के लिये सर्तक रहते थे। कभी-कभी यह सतर्कता सीमा पार कर जाती थी। फिर भी जनता जनार्दन का समर्थन उन्हें मिलता था।

दुर्गा मोहन अपने प्रारंभिक जीवन में श्रद्धा और समर्थन पा चुके थे। जब वे अपने मास्टर जीवन के दूसरे अध्याय में पहुँचे तो देखा कि व्यक्तिगत रूप में कोई परिवर्तन नहीं होने पर हेडमास्टर नामक व्यक्ति अपने पद से हटा दिये जाते हैं। व्यक्ति स्वाधीनता के नाम से एक नयी स्थिति का आयात हुआ है। जिसके बाहर-भीतर बहुत पोल हैं। उसके प्रभाव से 'शिक्षा' की जो प्रमुखता थी वह 'राजनीति' के अधिकार में चली गयी है। तभी तो शिक्षा को संकल्पित लोग राजनीति के खिलाड़ियों के मंच पर भीड़ लगाने लगे हैं। दुर्गा मोहन के जमाने की बात अब नहीं रही।

इस हालात को उन्हें ज्यादा दिनों तक झेलना नहीं पड़ा। जल्दी ही विदा होने का समय आ गया वर्ना वे गुद हट जाते। कारण कुछ और नहीं था। अन्तिम दिनों में उन्हें यह बहुत कचोटता रहा कि 'व्यक्ति स्वतन्त्रता' का सबसे अधिक प्रभाव लड़कों

के अनुशासन-बोध पर पड़ा। शिक्षा की बुनियाद हिल उठी है और विदेशी अफसर शाही से जूझते हुए सर आशुतोष जैसे मनीषी ने जो फ्रेम बनाया था, स्वदेशी स्वेच्छा की रक्षा मे हो सकता है एक दिन वह भी टूट जाये।

स्कूल छोड़ने के बाद से उन्हे ऐसा ही लग रहा था। वे हर तरफ से अपने को समेटने के प्रयत्न मे लगे रहते, यहाँ तक कि कुछ दिनो तक अखबार भी पढना छोड दिया। मगर एक पढा लिखा आदमी आँखे बन्द कर सकता है पर मन के झरोखे बन्द नही कर सकता। चेष्टा करने पर भी नही। उस झरोखे से जो जितना टुक आता था, उसी से वे अस्थिर रहा करते थे। दिल दुखता रहता था। उससे बचने के लिये ही वे साहित्य और दर्शन मे लिप्त रहा करते थे। इस युग के साहित्य मे नही, उसमे भी तो लक्ष्यहीनता व्याप्त है—उन्नीसवी शताब्दी एव उसके पूर्व के क्लासिक, जिसका आग्रह सर्वकालिक होता है, जो हर युग का है—शेक्सपीयर, डिकेंस, टाल्सटाय बंकिम-चन्द्र, रवीन्द्रनाथ, रोमारोल्या-उसमे ही वे खोये रहने की चेष्टा करते रहते।

किन्तु बचना मुश्किल था। युग अपना प्रभाव कैसे छोड सकता है? वह तो पल-छिन हुंकारता रहता है—'ऐसे युग मे जब जन्मे हो तो कर्ज तो चुकाना ही होगा।' समय सापेक्षता से कौन बच पाया है! दुर्गा मोहन भी अपने आप को बचा नही पाये, जितना भी वे क्लासिक और दर्शन मे मुँह क्यो न छिपाये।

हो सकता है वह बच भी जाते यदि शुरू मे भयानक भूल न कर बैठते तो, यानी इस बगला देश मे नही जनमते। जहाँ के एक बगाली कवि ने एक दिन उन्मुक्त कठ से गाया था—'सार्थक जनम है मेरा लेकर जनम इस देश।' वे क्या कभी सपने मे भी सोच सके थे कि उनकी यह भावना उसी देश मे कितना हास्यास्पद हो उठेगी। इस सगीत की रचना उन्होने जिस परमतत्व को उपलब्ध कर की थी, वही स्वाधीनता जब मिली तब उसके देश के लोगो ने डर कर उसकी ओर देखा तो असलियत का पता चला कि यह कुछ नही है, है विदेशियो द्वारा चाकू और लालफीता जो उनकी छाती मे चुभ रहे हैं। उस समय भी वे सोच नही सके कि कितना खून बहेगा उस घाव से। कुछ दिन बीतने पर इसका पता चला। यह अनुभव हुआ कि अब यह खून पोछे भी नही पुंछ सकता।

जहाँ यह चाकू घँसाया गया था, उसके कुछ ही दूर पर इस पार दुर्गा मोहन का जन्म हुआ था। उनका कार्य-क्षेत्र और आखरी जीवन का ठौर भी अधिक दूर नही रहा। इसलिये इस क्षत-विक्षत स्वाधीनता के वीभत्स रूप को भी उनकी आँखो ने प्रत्यक्ष देखा। भटकाव—भटकाव भी कैसे कहा जाये? षडयन्त्रपूर्ण राजनीति के एक ही धक्के मे बगाली कही जाने वाली एक जाति राता-रात भिखारियो मे बदल गयी। ऐसा और इतना निर्मम उदाहरण दुनिया के इतिहास मे कही देखने को नही मिलता। भिखारी वह होता है, जिसका कुछ नही होता—जो अन्नहीन, वस्त्रहीन, गृहहीन होता है।

लोग बढ़ने से भीड़ बढ़ी है, मगर यह तो बराबर से ही है। यह अपना राष्ट्रीय अभ्यास है, संस्कार भी कह सकते हो। सिर्फ इस बंगला देश में ही नहीं, सम्पूर्ण भारत में ऐसा ही है।"

"यह ठीक है। पच्छिम में इससे भी ज्यादा है।" अभि ने उसमें अपने को जोड़ा; "यहाँ तो, हम ऊँची जाति के लोग ऐसी खुली जगह में आकर बैठने में कुछ हेठी समझते हैं। वहाँ तो ऊँच-नीच सब समान है। सभी की गति 'मैदान' में है। यहाँ तक कि महिलाएँ भी लाचार हैं। जब कि वे शर्मिली कम नहीं होतीं। इस खास समय को छोड़ कर आदरू के बारे में वे उदासीन नहीं होतीं। दरअसल हमारे चरित्र में एक सेल्फ कंट्राडिक्शन जो है। हम गाय को देवी के रूप में पूजते हैं, गोदान हमारा एक बड़ा कर्म है, 'धर्म-साँड़' जितना भी अत्याचार क्यों न करे लेकिन गाय को छुआ कि बस। जब कि गऊ की ऐसी अवहेलना दुनिया के किसी अन्य देश नें नहीं होती। इसी प्रकार गंगा हमारी माँ के समान है, जिसमें एक डुबकी लगाने से हमारे लिए स्वर्ग का दरवाजा खुल जाता है, और हम हर रोज सवेरे उस पर चढ़ा आते है अपनी देह का रिजेक्शन, यानी सब से गंदा दुर्गंधित चोला। सोचने पर इससे भयानक कुछ नहीं लगता।"

उस दिन अभिजीत कुछ पहले ही आ पहुँचा। उसके हाथ में कागजातों का एक पुलिन्दा था। चेहरे पर उलझन का भाव।

उस समय दुर्गा मोहन जी हवाखोरी से लौट कर हल्का नाश्ता करने के बाद लॉन की देख-भाल में लगे थे। अभि की ओर देखते हुए मन्द मुस्कान के साथ बोले, "आओ।" कागजात से वे परिचित थे। कल सारी दोपहर उसे मनोयोगपूर्वक देखते रहे थे। कुछ देर अभि भी बैठा था। दोनों मिल कर इसी विषय पर बातें करते रहे। इसके बाद वह चला गया था। उसे कलकत्ता जाना था। दुर्गा मोहन ने शाम को सारे कागजात उसके घर भिजवा दिये थे।

अभिजीत पुलिन्दा खोल, मेज पर रख एक टाइप किया फुल-स्कैप कागज निकालते हुए बोला, "जी, एक बात पर आपने गौर नहीं किया।"

"किस पर ?" कागज के ऊपर दुर्गा मोहन झुक गये।

अभि ने उंगली रख कर दस्तखत की ओर उनका ध्यान खींचा। फिर बोला, "यह ठीक है कि नाम से फौरन पकड़ना मुश्किल है।" और वह हँस पड़ा।

दुर्गा मोहन भी हँसते हुए बोले, "सिर्फ नाम ही क्यों, क्वालिफिकेशन और दूसरे पार्टीकुलर जैसे लिखा गया है, उससे सहज में पकड़ पाना कठिन है। समझ में बात तब आयी जब टेस्टीमोनियल पर गौर किया।"

"चुनाव शायद पहले ही कर लिया था ?"

"नहीं, सब पढ़ कर ही किया। अपने को कौन कम कहना है ? इस पर ध्यान देने से कहीं काम चलता है ? देखना यह होगा कि दूसरे क्या करते हैं।"

अभिजीत अवाक् उनकी ओर देखता रहा। दुर्गा मोहन ने यह देख कर कहा, "क्यों, क्या तुम्हारे विचार से इससे भी बेटर कोई और है ?"

"नहीं," अभिजीत ने फौरन उत्तर दिया, "हमें जो चाहिए, जैसे आदमी की जरूरत है, इस दृष्टि से तो यही बेस्ट कंडिडेट हैं, पर।" पर के बाद वह रुक गया।

दुर्गा मोहन ने पूछा, "पर, पर मैंने विचार नहीं किया, सो बात नहीं। कुछ दिक्कतें हैं। अपनी ओर से भी और हो सकता है, उसकी ओर से भी। मगर सिर्फ इस वजह से दरख्वास्त को रिजेक्ट नहीं किया जा सकता। शुरू में ही हम लोग एक गलती कर बैठे। विज्ञापन में यह उल्लेख कर देना चाहिए था कि महिलाएँ अर्जी न दें—वुमेन आर अनसूटेबुल—जैसा किसी-किसी सरकारी विज्ञापन में होता है। जब यह चूक हो ही गयी तो उसे बाद नहीं किया जा सकता, यह अनुचित होगा।"

अभिजीत ने कुछ नहीं कहा। मन-ही-मन मान बैठा कि यह 'अनुचित' शब्द जिस प्रकार कहा गया है, उसके आगे कुछ कहना बाकी नहीं रह गया। मास्टर जी को वह जानता है। मामूली बातों में भी उनसे वह न्यायपूर्ण सुझाव पाता रहा है। जो कुछ उन्होंने तै किया है वह जितना भी वास्तविक हो, काम में उससे जितनी भी उलझनें पैदा क्यों न हों लेकिन वे उससे टस-से-मस होने वाले नहीं हैं। वह यही पकड़े रहेंगे—यह अनुचित होगा।

जमींदारी उन्मूलन के बाद जो जटिलताएँ सामने उभरीं, उनसे मुकाबिला करने से कहीं अधिक अहमियत है रिफ्यूजियों के द्वारा जबरदस्ती दखल करने की समस्या को सहज भाव से मिटाने के लिये एक ऐसे मैनेजर की जो इस समस्या को एक तरफ तो कड़ाई से तथा दूसरे पक्ष से सहानुभूति पूर्वक हल कर सके, इसके लिये पहले अभि ने मास्टर जी से ही अनुरोध किया था कि वे अपने जाने हुओं में से किसी को इस काम में लगा दें। ऐसा कोई उनकी जानकारी में न—ी था, यह बा० नहीं। पर इस तरह किसी को रोजी देना उन्होंने उचित नहीं समझा, क्योंकि उससे भी योग्य बहुत से लोग हो सकते। इसलिये यह तय किया गया था कि इसके लिये अखबारों में विज्ञापन दिया जाये। विज्ञापन में इसका साफ-साफ जिक्र कर दिया गया था कि नौकरी के उम्मीदवार को शरणार्थियों के चरित्र, उनके आचार-व्यवहार, उनकी खास तरह की मानसिकता एवं इलाके से भलीभांति परिचित होना जरूरी है। साथ ही उम्र, शिक्षा, पारिवारिक परिचय, जमींदारी के विषय में ज्ञान (यदि कुछ हो) और इससे संबंधित कुछ जानकारी देने का भी निर्देश था। इसी के साथ प्रशंसा-पत्रों की नकल भी माँगी गयी थी।

यह कहना ही काफी होगा कि अर्जियों का ढेर लग गया था। अभिजीत के हाथ में जो पुलिन्दा था, वह उसी का छोटा सा हिस्सा था। बहुत सारे तो पहली जाँच में

ही खारिज हो चुके थे। यह काम अभि ने स्वयं कर डाला था, मास्टर जी पर इसका बोझ नहीं डाला। अन्तिम चुनाव का जिम्मा उन पर ही था। उन्होंने सब दृष्टियों से जिसे योग्यतम मान कर चिह्नित किया था, उसके नाम पर पहले गौर नहीं किया जा सका, देखने की जरूरत भी नहीं थी। ऐसी स्थिति में नाम महत्व नहीं रखता। बाद को उस पर उनकी निगाह गयी थी। वह नाम था निहार चटर्जी। इस नाम से यह अनुमान वे लगा नहीं सके थे कि यह किसी लड़की का नाम है। बाद को जब प्रशंसा-पत्र पढ़ने लगे तब वे 'श्री' देख कर चौंके थे। इसके बाद सारी अर्जियों को फिर एक बार उलट गये और तुलना करते हुए विचार करने लगे। पर निहार चटर्जी ही अन्त में हर तरह से योग्य मालूम पड़ीं। उन्होंने उसी के पक्ष में अपनी राय दे दी।

अभिजीत उनके तर्क से अवाक हो गया, लेकिन उसका मन इस पर जमा नहीं, यह दुर्गा मोहन जी भाँप गये थे। उन्होंने जो किया वह क्या अपनी मर्जी से ? उनका तो काम था सबसे अधिक नम्बर जो पाने लायक है उसे वही देना। सारी जिन्दगी तो वे यही करते आये हैं, आज भी उन्होंने यही किया। विश्वविद्यालयों की कापियाँ जाँचते वक्त तो छात्राओं और छात्रों में उनके लिये कोई भेद नहीं रहा।

अभिजीत अभी भी सिर झुकाये बैठा था। दुर्गा मोहन ने एक बार फिर उसकी ओर देखा। उसके मनोभाव को पढ़ने का प्रयत्न उन्होंने किया। उचित-अनुचित के सवाल पर वह गौर नहीं कर सका है, बात यह नहीं। फिर भी इस चुनाव पर उसका मन टिक नहीं रहा है। वह एक अलग पहलू है। गुण ही सिर्फ योग्यता की कसौटी नहीं होती, देखना यह पड़ेगा कि इस विशेष काम में यह लड़की कितनी उपयोगी सिद्ध होगी। वह सिर्फ लड़की ही नहीं है, उम्र में जवान भी है। हो सकता है, विज्ञापन की भाषा से काम की गहराई का अन्दाज वह न लगा सकी हो। संभव भी नहीं है। इस बारे में और भी जानकारी प्राप्त कर उसे ही निर्णय लेना होगा कि क्या वह इस काम में सफल हो सकती है ?

"एक बात हो सकती है।" अचानक मास्टर जी की आवाज कानों में कौंधते ही अभिजीत ने चौंक कर उनकी ओर देखा। दुर्गा मोहन जी ने कहा, "उस लड़की को बुलवा भेजें। इंटरव्यू में जैसा होगा कुछ कर लिया जायेगा।"

यह भी अभिजीत को कुछ जँचा नहीं, फिर भी जहाँ जिस बात के लिये वह बिल्कुल निराश हो चुका था उसकी कुछ आशा बँधी। बोला, "आप अपने यहाँ ही बुलायें।"

"नहीं, नहीं, मेरे यहाँ क्यों ? नौकरी तुम दोगे, वह तुम्हारी मैनेजर होगी। तुम्हारे दफ्तर में आये।"

"मगर इंटरव्यू तो लेंगे आप।"

"मैं तुम्हारे साथ रहूँगा, एडवाइजर के रूप में। और—।"

कई पल चुप रह कर पुनः बोले,' "बहूरानी को भी अपने बोर्ड में रखना होगा।"

अभिजीत सोचे बैठा था कि इस खबर से बहूरानी को चौंका देगा। मगर बहूरानी ने जो कहा उससे वह स्वयं अवाक रह गया, "मैनेजर जिसे चुना गया है, वह एक लड़की है।" यह सुनते ही बहूरानी ने झट से कहा, "अच्छा ही तो है, चलो मुझे कम से कम एक संगिनी तो मिली। इतने बड़े मकान में अकेले कितना मैं घुटती हूँ!"

"लेकिन तुम्हारा संग निभाने के लिये तो वह रखी नहीं जा रही है।" मन्द मुस्कान के साथ अभिजीत बोला, "वह आ रही हैं काम करने, बाहर से ही उसका वास्ता होगा। तुम उसे पा कैसे सकती हो?"

"डरो नहीं, मैं बाधा नहीं बनूँगी।" देवर की ओर तिरछी निगाह से देखते हुए बहूरानी ने 'बाधा' पर जोर दिया, "वह मालिक का दायरा है, यह मुझे पता है। उसमें हिस्सा मैं बटानेवाली नहीं हूँ। लेकिन काम में विराम भी तो है, उसी अवसर का लाभ उठा लेंगे। इसमें तो तुम्हें कोई उज्र नहीं है न?"

अभिजीत ने महसूस किया कि बिला वजह वह गड़बड़ी में बुरी तरह फँस गया और कि चर्चा अगर आगे बढ़ी तो चिकोटी काटने वाली भाभी से पार पाना कठिन है। इसलिये हँसता रहा। बहूरानी ने कहा, "कब से वह आ रही है?"

"आयेगी ही, ऐसा कुछ तय नहीं हैं। सिर्फ अर्जी दे दिया और नौकरी मिल गयी? इसके बाद की रस्म है इन्टरव्यू।"

"यह भला क्या होता है?"

"भेंट-मुलाकात, पूछ-ताछ, यानी कितना क्या वह कर सकती है, या कर नहीं सकती है इसकी-जाँच-पड़ताल। इसके लिये वह बुलायी गयी है—परसों दस बजे। तुम तैयार रहना।"

"मैं?" महामाया जैसे आसमान से गिरी।

"हाँ, तुम्हें भी हम लोगों के साथ रहना होगा। इन्टरव्यू बोर्ड के तीन सदस्य हैं—हेडमास्टर जी, तुम और मैं।"

"अजब बात है। मैं वहाँ क्या करूँगी?"

"सभी को मिल जुल कर, देख-सुन कर तय करना पड़ेगा न?"

"मैं भला क्या देखूँगी? मनेजर-वनेजर के बारे में मैं जानती भी क्या हूँ?" इसके बाद आवाज दाब, होठों के भीतर हँसी छिपा कर बोली, "लड़की देखने जैसा कुछ होता तो मैं रहती भी।"

बहूरानी अब मास्टर जी के सामने होने लगी थी। वे आये तो उन्हें राजी

ही खारिज हो चुके थे। यह काम अभि ने स्वयं कर डाला था, मास्टर जी पर इसका बोझ नहीं डाला। अन्तिम चुनाव का जिम्मा उन पर ही था। उन्होंने सब दृष्टियों से जिसे योग्यतम मान कर चिह्नित किया था, उसके नाम पर पहले गौर नहीं किया जा सका, देखने की जरूरत भी नहीं थी। ऐसी स्थिति में नाम महत्व नहीं रखता। बाद को उस पर उनकी निगाह गयी थी। वह नाम था निहार चटर्जी। इस नाम से यह अनुमान वे लगा नहीं सके थे कि यह किसी लड़की का नाम है। बाद को जब प्रशंसा-पत्र पढ़ने लगे तब वे 'शी' देख कर चौंके थे। इसके बाद सारी अर्जियों को फिर एक बार उलट गये और तुलना करते हुए विचार करने लगे। पर निहार चटर्जी ही अन्त में हर तरह से योग्य मालूम पड़ीं। उन्होंने उसी के पक्ष में अपनी राय दे दी।

अभिजीत उनके तर्क से अवाक हो गया, लेकिन उसका मन इस पर जमा नहीं, यह दुर्गा मोहन जी भाँप गये थे। उन्होंने जो किया वह क्या अपनी मर्जी से? उनका तो काम था सबसे अधिक नम्बर जो पाने लायक है उसे वही देना। सारी जिन्दगी तो वे यही करते आये हैं, आज भी उन्होंने यही किया। विश्वविद्यालयों की कापियाँ जाँचते वक्त तो छात्राओं और छात्रों में उनके लिये कोई भेद नहीं रहा।

अभिजीत अभी भी सिर झुकाये बैठा था। दुर्गा मोहन ने एक बार फिर उसकी ओर देखा। उसके मनोभाव को पढ़ने का प्रयत्न उन्होंने किया। उचित-अनुचित के सवाल पर वह गौर नहीं कर सका है, बात यह नहीं। फिर भी इस चुनाव पर उसका मन टिक नहीं रहा है। वह एक अलग पहलू है। गुण ही सिर्फ योग्यता की कसौटी नहीं होती, देखना यह पड़ेगा कि इस विशेष काम में यह लड़की कितनी उपयोगी सिद्ध होगी। वह सिर्फ लड़की ही नहीं है, उम्र में जवान भी, है। हो सकता है, विज्ञापन की भाषा से काम की गहराई का अन्दाज वह न लगा सकी हो। संभव भी नहीं है। इस बारे में और भी जानकारी प्राप्त कर उसे ही निर्णय लेना होगा कि क्या वह इस काम में सफल हो सकती है?

"एक बात हो सकती है।" अचानक मास्टर जी की आवाज कानों में कौंधते ही अभिजीत ने चौंक कर उनकी ओर देखा। दुर्गा मोहन जी ने कहा, "उस लड़की को बुलवा भेजें। इंटरव्यू में जैसा होगा कुछ कर लिया जायेगा।"

यह भी अभिजीत को कुछ जँचा नहीं, फिर भी जहाँ जिस बात के लिये वह बिल्कुल निराश हो चुका था उसकी कुछ आशा बँधी। बोला, "आप अपने यहाँ ही बुलायें।"

"नहीं, नहीं, मेरे यहाँ क्यों? नौकरी तुम दोगे, वह तुम्हारी मैनेजर होगी। तुम्हारे दफ्तर में आये।"

"मगर इंटरव्यू तो लेंगे आप।"

"मैं तुम्हारे साथ रहूँगा, एडवाइजर के रूप में। और—।"

करने की एक वार और कोशिश की, "तुम रहो तो ठीक ही है वहूरानी। खास कर इसलिए कि वह एक लड़की है और अभी उम्र भी कम है। और फिर तुम्हारे विना कुछ हो भी तो नहीं सकता। वंधोपाध्याय परिवार के भले-वुरे से तो तुम जुड़ी हो। इसलिये ऐसे एक जरूरी काम के लिये तुम्हारा मत आवश्यक है।"

महामाया वोली, "यह लड़की तो हमारी जैसी पुराने जमाने की नहीं होगी मास्टर जी, जो मर्दों के सामने लाजवन्ती वनी वैठी रहेगी। आज कल की पढ़ी-लिखी लड़की है, और वह नौकरी करने आ रही है। मेरा रहना कोई मतलव नहीं रखता और रही वात मत की ? आप और लाला मिल कर जो तै करेंगे, उस पर मैं भला वोल भी क्या सकती हूँ।"

दुर्गा मोहन जी ने कुछ कहा नहीं। चलने के लिये उठ खड़े होते हुए वोले, "एक लड़की को हम लोग जो काम सौंप रहे हैं—अगर उसके लिये वह उपयुक्त हुई और उसकी तरफ से कोई आपत्ति नहीं हुई तो तुम्हें कोई आपत्ति नहीं होगी न ?"

"नहीं-नहीं आपत्ति क्यों होगी ? आज कल लड़कियाँ तो हर तरह का काम कर रही हैं—ऐसा मैंने सुना है।"

दुर्गा मोहन जी चले जा रहे थे, वहूरानी दो कदम आगे वढ़ कर वोलीं, "वह लड़की कुँवारी है या विवाहिता ?"

मास्टर जी जाते हुए रुक गये। वहूरानी की ओर मुखावित होकर वोले, "शायद कुँवारी। अर्जी में ऐसा कुछ लिखा नहीं है पर इसके साथ जो प्रशंसा-पत्र नत्थी है, उसमें नाम के आगे 'कुंवारी' शव्द का उल्लेख है, जवकि ये सव काफी दिनों पहले के हैं।...यह सवाल क्यों उठा वहूरानी ?"

"और कुछ नहीं, मैं उनके रहने की वात सोच रही थी। विवाहिता होगी तो वह अलग कमरा चाहेगी और अगर कुँवारी हुई और साथ कोई न आया तो यहीं रह सकती है। वीच वाले मकान में तीन-चार कमरे खाली भी हैं।"

"यह सव तो तुम जैसा चाहोगी वैसा ही होगा। पहले उसे 'काम' तो मिले, इसके वाद 'धाम'। इतना कह कर मुस्कराते हुए दुर्गा मोहन जी आगे वढ़ गये।

इन्टरव्यू का समय निर्धारित था, दस वजे। इसके कई मिनट पहले दिखा, विशाल सदर दरवाजे के अन्दर एक लड़की घुसी। दुर्गा मोहन जी दफ्तर वाले कमरे के पीछे के एक कमरे में वैठे प्रतीक्षा कर रहे थे। खिड़की से उन्होंने इस लड़की को देखा। छरहरी-सी, कुछ लम्वी, हो सकती है इसीलिये कुछ अधिक दुवली नजर आती हो वर्ना दोहरे गढ़न की कही जा सकती है। रंग साफ नहीं, पर काला भी नहीं। कुछ-कुछ श्याम वर्ण की जैसी वंगला देश की अधिकतर लड़कियाँ होती है। थोड़ा और निकट आने पर शक्ल की वनावट कुछ साफ हुई। खूवसूरत कहने में रुकावट है; फिर भी कुल मिलाकर सुश्री कहने में किसी को हिचक नहीं। अंग्रेजी में जिसे हैंडसम कहा

जाता है। नाक, आँख, ललाट और ठोढ़ी पर की चमक पर सबसे पहले नजर पडती है।

चेहरे की तरह पहिरावे में भी कोई चाक-चिक्य नही। आकाशी रग के किनारे वाली मामूली तांत की साडी, ब्लाउज भी उसी रग का। हाथ मे एक सादा-सीधा-सा बैग और छोटी बेंट वाला औरताना छाता।

गेट पार कर दफ्तर की खुली चौहद्दी मे पहुँच एक बार इधर-उधर ताक कर देखा। पहले के दिनो मे यहाँ दो-चार पाइक-बरकन्दाज मुकर्रर होते। पुराने रीति-रिवाज के अनुसार दुर्गा मोहन जी ने भी ऐसा ही कुछ सोच रखा था, पर उस लडकी को आगे बढ कर दफ्तर तक पहुँचाते नही देख कर कुछ अनमने से हो गये। ऐसे मे ही हलधर सामने बढ आया। शायद अभिजीत ने कह रखा हो। वह कुछ पूछ कर उसे पहचान गया। जमीदारी अमल मे गाव तकिये के सहारे गडगडे का नैचा हाथ मे लेकर वे आर्थी-प्रार्थी, अतिथि-आगतो से भेंट करते थे, आज ऐसी व्यवस्था नही थी। बगल के छोटे कमरे मे बैठकर अभिजीत काम करता है। चीजो के नाम पर एक आफिस मेज और कई कुर्सियाँ। वही हलधर ने इन्टरव्यू देने आयी लडकी को ला बैठाया। साथ ही दुर्गा मोहन भी उस कमरे मे आये और उनके पीछे-पीछे अभिजीत भी आ गया। निहार उठ खडी हुई। ये ही उसके परीक्षार्थी हैं और नियुक्ति करने वाले अधिकारी भी, यह सहज ही उसकी समझ मे आ गया। उसने विनम्रतापूर्वक दोनो को नमस्कार किया।

अभिजीत ने उसे आते नही देखा था। उसके साथ कोई आया होगा, यह सोचकर अभिजीत हलधर से कहने ही वाला था कि उन्हे बैठाये कि निहार बोल उठी कि वह अकेली आयी है।

अभिजीत ने फिर कुछ नही कहा। दुर्गा मोहन बोले, "आने मे कोई दिक्कत तो नही हुई न।"

गर्दन हिलाकर निहार ने बताया, नही। फिर दुर्गा मोहन जी ने कई सवाल किये। कलकत्ते मे कहाँ रहती हो ? मकान अपना है या किराये का ? कहाँ की रहने वाली हो, पूर्व बगाल के किस जिले की ? कितने दिन हुए इस पार आये ? परिवार मे कौन-कौन हैं ? वगैरह-वगैरह। निहार ने एक-एक का उत्तर दिया। अन्तिम सवाल के उत्तर मे यह स्पष्ट हुआ कि यहाँ अपनो के नाम पर हैं सिर्फ भाई और बहिन।

"और देश मे ?" दुर्गा मोहन ने पूछा।

"वहाँ कोई नही।"

"माता-पिता ?"

निहार झट से उत्तर नही दे पायी। उसके शान्त-गभीर चेहरे पर धीरे-धीरे उदासी उतर आयी उसने दाँतो से होठ काटने से अनुमान लगा लिया गया कि वह अपने को

कहीं रोक रही है। कई पल बीते, तब कहीं वह सहज हुई और बोली, "वे नहीं रहे।"

माता-पिता का जिक्र छिड़ते ही इस लड़की की शक्ल पर भावों का जो परिवर्तन हुआ और फिर अपने को सहज बनाने की उसने जो चेष्टा की इससे दुर्गा मोहन और अभिजीत से कुछ छिपा नहीं रहा। वे समझ गये कि 'वे नहीं रहे' इस छोटे से उत्तर में कोई भयानक दर्द छिपा है। इसलिये इस विषय की कोई चर्चा करने का यह अवसर नहीं हो सकता। दोनों ही पक्षों में मन ही मन समझौता हो गया। हेडमास्टर ने अभिजीत की ओर एक बार देखकर उसकी चुप्पी को सहमति मान कर बात आगे बढ़ाई। यह बात इस बात की एक छोटी-सी भूमिका थी कि विज्ञापन में 'मैनेजर' शब्द का उल्लेख होते हुए भी काम ठीक 'मैनेजरी' नहीं है। जमींदारी जब नहीं रही, उसकी मैनेजरी का भी अब कोई मतलब नहीं होता फिर भी मैनेजमेंट जैसा कुछ तो है ही, जो बहुत कुछ इस विलुप्त जमींदारी से जुड़ा है। सरकार ने जमींदारों का अधिकार ले लिया है मगर उनके लेन-देन की पूरी-पूरी जिम्मेदारी नहीं ली है। एक कीमत तै अवश्य किया है, लेकिन वह सिर्फ कागजों पर ही। वे रुपये कब इनके हाथ लगेंगें, इस बारे में कुछ तै नहीं है। इसके लिये लिखा-पढ़ी, कोशिश पैरवी करते रहना होगा। कितने दिनों और परिणाम कब क्या निकलेगा, यह कहना कठिन है।

"इसके अलावा," कहते हुए दुर्गा मोहन ने अभिजीत की ओर देखा, "इस बारे में और जो कुछ कहना है, वह तुम कह सकते हो अभि ! मैं मास्टर ठहरा, जमींदारी की समझ मुझमें कहाँ हो सकती है।"

"मुझे भी कितनी समझ है, आप अच्छी तरह जानते हैं।"

"फिर भी जब से आये हो, तब से कुछ देख-रेख तो कर ही रहे हो।"

"उसी का तो नतीजा यह है कि सब गड़बड़ाता जा रहा है। मगर एक बात समझ में आ गयी है।"

"क्या, बताओ तो ?"

"यही कि यह मेरे बश का नहीं है।"

दुर्गा मोहन हँस पड़े। निहार के होंठो पर भी हँसी की पतली सी रेखा उभरी। दुर्गा मोहन ने उसकी ओर देखकर कहा, "यानी यह सब आप को समझ लेना होगा।"

"और जो कुछ करना है—।" अभिजीत ने आगे जोड़ा; "वह भी करना होगा। पुराने अनुभवी कई लोग हैं। उनसे सहयोग आपको मिलेगा। इस बारे में आप को भी अनुभव होगा ही, ऐसा आपने लिखा भी है।"

"अनुभव यानी ?" निहार ने अपना पक्ष स्पष्ट करना चाहा, "मेरे भाई की छोटी-सी जमींदारी थी। उसका बहुत बड़ा हिस्सा पाकिस्तान में चला गया, इधर भी कुछ है, मतलब अभी वह सरकार की देख-रेख में है। वे सरकारी नौकरी में बाहर ही

दिन बिताते रहे हैं। अब बूढ़े हो चुके हैं, इसलिए जो कुछ करना पड़ता है मुझे ही, इसी से जो कुछ सीख सकी हूँ।"

दुर्गा मोहन ने कहा; "इनकी हालत भी कुछ ऐसी ही है। जो कुछ था उस पार चला गया, मतलब जो कुछ था सब डूब गया। समस्या इस पार मानी इधर की है। ऊपर से एक नई आफत आ गयी जबर-दखल। आते हुए आपने देखा ही होगा।"

"उस कालोनी की बात आप कर रहे हैं न ?" निहार ने पूछा।

"हाँ, वह सभी इनकी जमीन है।"

अभिजीत ने कहा, "इसी विषय में कुछ करना ही मेरा अभिप्राय है। विज्ञापन में भी यह लिखा था। आपने देखा ही होगा।"

निहार ने गर्दन हिलाकर स्वीकारा, उसने देखा है।

पल भर की चुप्पी के बाद अभिजीत ने कहा, "इन लोगों से एक तरह के समझौते की जरूरत है, जिसके लिए हमलोग जमींदारी मनोभाव से कुछ करना नहीं चाहते हैं, उनकी माँगों को जितना भी हो सके सहानुभूति के साथ निपटाना चाहते हैं। यह भी ठीक है कि दूसरे पक्ष के स्वार्थों का भी ख्याल रखना ही पड़ेगा। इन दोनों के बीच सामजस्य कैसे बैठाया जाये, यही उपाय निकालना है और इसके लिये ही आपका सहयोग जरूरी है।

निहार को कुछ कहना नहीं था। सिर झुकाये चुप बैठी रही। इससे यह सिद्ध हुआ कि अभिजीत की बात उसने अच्छी तरह समझ ली है।

सभी चुप थे। इस चुप्पी को अभिजीत ने ही तोड़ा, "हमारा यह सौभाग्य है कि हमारे परम पूज्यनीय गुरु—।" उसकी दृष्टि दुर्गा मोहन की ओर गयी साथ ही वह बोले, "भूतपूर्व और जोड़ो।"

"स्कूल कमेटी के लिये आप भूतपूर्व हो सकते हैं, मेरे या और किसी के लिए नहीं।" अभिजीत ने फौरन उत्तर दिया और पूर्व प्रसग में लौट गया, "इनका मूल्यवान सुझाव मिलता रहेगा। इनके अतिरिक्त, हमारी भाभी—"

यह सुनते ही निहार ने पलकें उभार कर देखा। देखने में चकित-भाव था। उसकी ओर देखते हुए दुर्गा मोहन बोले, "बनर्जी परिवार की लक्ष्मी-स्वरूपा। आप से आज ही भेंट होगी। लीजिए शायद बुलावा आ गया—क्यों रे ?"

हलधर हाथ जोड़े विनय भाव से दरवाजे पर आ खड़ा हुआ था। मास्टर जी के सवाल पर निहार की ओर इशारा करते हुये कहा, "बहनजी मिल कर जायें ऐसा कहा है बहूरानी ने, और आप भी चले मत जाइयेगा।"

दुर्गा मोहन हँसते हुये बोले; "देखिये भला, अभी से ही बहनजी हो गयी। अब मुझे भी आप-आप करना जँचता नहीं।"

हार ने संकोच के साथ कहा; "आप का मुझे आप कहना अच्छा नहीं

'तो ठीक है उसे यहीं खत्म कर दिया जाये। अब अन्दर चली जाओ। और
छ पूछना है क्या ?"

अभिजीत ने गर्दन हिलाकर कहा; "जी नहीं।"

मैनेजर के पद पर निहाल चटर्जी कीं नियुक्ति यानी फाइनल सेलेक्शन के पहले
नों पक्षों की सुविधा के लिये एक इंटरव्यू जरूरी है, जब यह निश्चय किया गया दुर्गा
ोहन ने उसी वक्त अभिजीत से कहा था, बहूरानी को भी अपने बोर्ड में रखना होगा।
यह बात बहुत अहम नहीं होते हुये भी बहुत सोच-विचार कर कही गयी थी।

पहली बात जो सहज में गौर करने की है और जैसा कि उन्होंने बहूरानी से
भी कहा था कि अर्जी देने वाली एक महिला है। कोई पुरुष होता तो इन्टरव्यू में उनके
होने का सवाल ही नहीं उठता था। लेकिन एक लड़की को हर तरह से समझने के लिए
सिर्फ पुरुष की नजर ही पर्याप्त नहीं है; कुछ कमी रह जाती और जब कि यह सुविधा है
तो क्यों न उसका फायदा उठाया जाय।

अलावा इसके मैनेजर जब कि एक लड़की हो तब अन्दर महल से उसका संपर्क
होगा ही। फिर वह शुरू से ही क्यों न रहे।

ऊपरी तौर से यह सब होते हुए भी दुर्गा मोहन के प्रस्ताव के पीछे एक कारण
था, इस परिवार के विगत कई वर्षों के इतिहास में जो कारण समाधान पाने को
छटपटाता रहा है। हेडमास्टर का इस परिवार से प्रत्यक्ष रूप में संपर्क नहीं था।
अभिजीत के लौट आने के पहले कभी उनको बुलाया नहीं गया था और न वे खुद आये
थे। फिर भी इस ऊँची चहार दीवारी से घिरी विशाल अट्टालिका से उनका सूक्ष्म और
अव्यक्त संपर्क बना रहा। उस ओर के उत्थान-पतन पर, दूर रहते हुए भी बिना गौर
किये वे रह नहीं सकते थे। बहूरानी जैसी पढ़ी-लिखी लेकिन बुद्धिमती और शील-स्वभ
वाली महिला के जीवन-क्रम पर उनकी नजर बराबर रही है। अपने वधू जीवन के प्र
अंक में महामाया बंद्योपाध्याय परिवार की बहुत लाड़ली बहूरानी रही। घर की म
प्रतिष्ठा की शोभा-श्री के सिवा उसकी और कोई भूमिका नहीं रही। जिस दि
परिवार से सास ने मुंह मोड़ लिया उस क्षण से ही आत्मीय, सगे-संबंधी—नौकर-
नौकरानियों से भरे-पूरे परिवार के प्रति कर्तव्य का निर्वाह उसके कन्धे पर आ गय
वक्त उम्र ही क्या थी ! मगर परिवार की सभी परंपराएं और कर्तव्य वे पू
आयीं। हो सकता है उम्र कम होने से ही उनका 'बहूरानी' नाम आज भी '
में बदल नहीं पाया। यही कारण है कि वे आज सिर्फ मालकिन ही नहीं हैं, स

बाहर-भीतर सब उन्हें देखना पड़ता है। बनर्जी परिवार की रीति-नीति यह नहीं थी। घरनी का करतब घर की सीमा तक ही सीमित, दफ्तर की दीवाल के बाहर पैर रखना अपराध-घर के बाहर आना जिस प्रकार अनीति थी, उसी प्रकार वहाँ के किसी काम में हस्तक्षेप करना भी महान् अपराध था। महामाया के समय तक इस नियम में कोई व्यति-क्रम उत्पन्न नहीं हुआ। जमींदारी के विषय में वे न कुछ बोल सकती थीं न कर सकती थीं। यहाँ तक कि जिस दिन पति ने मालिक की इच्छा के विरुद्ध बाखरगंज के विद्रोही प्रजा को मुट्ठी में करने के लिये वे नाव में बैठे, उस दिन महामाया का मन किसी आगत संकट की संभावना से बार-बार बिलखा था। मगर कब कहूँ-कैसे कहूँ, इसी द्विविधा में वह यह कह नहीं सकी—'तुम न जाओ।' यह कहना भी अपराध होता। अन्त तक वह चुप ही रही।

इन्द्रजीत फिर नहीं लौटा। वैधव्य की शून्यता के बोझ से महामाया किसी एकांत में जाना चाह कर भी जा नहीं पायी। ससुर उस समय जीवित थे। घर से उन्हें चिपका रहना पड़ा। ऊपर से कुछ और बोझ उस पर आ पड़ा, जो मालिक के जीते जी नहीं आया था। बनर्जी परिवार की सदा की रीति कायम नहीं रह सकी। बहूरानी के जीवन का नया अध्याय शुरू हुआ।

पत्नी की मौत के बाद से सुरजीत ने अपने अभ्यस्त जीवन-क्रम से अपने को बहुत कुछ समेटा। रोज दफ्तर में जा कर बैठते बस इतना ही। पर जब तक वे वहाँ रहते सर्फ गड़गड़ा गुड़गुड़ाते रहते, बातचीत खास किसी से नहीं करते, जरूरी काम-काज के लिये अगर कोई कुछ पूछने-ताछने आता तो बगल के कमरे की ओर इशारा कर देते। बगल के कमरे में बड़ा लड़का इन्द्रजित बैठाता था।

इसके बाद वह भी जब उनके सामने ही मुँह मोड़ गया, तब से दफ्तर से मालिक का जितना जैसा संबंध था वह भी नहीं रहा। पत्नी के कमरे की बगल में उनका जो सोने का कमरा था, वहाँ से हट कर वे बिचले मकान के एक छोटे-से कमरे में आ गये थे। वहाँ से वे कभी-कभार ही निकलते। एकदम जरूरी काम के बिना सदर नायब भी उनसे नहीं मिल पाते। बातें भी जो कुछ होतीं वह हाँ-ना में। दो-चार बातों के बाद ही वे उदासीन हो जाते—"जो अच्छा समझो, करो। मुझे परेशान मत किया करो।"

ऐसी जब स्थिति आती तब यज्ञेश्वर को बहूरानी की शरण लेनी पड़ती, "तुम्हें जरा मालिक के पास जाना होगा बहू।"

बहूरानी टाल नहीं पाती। बनर्जी परिवार की भलाई के लिये उन्हें सीमा का अतिक्रमण करना ही पड़ता।

कई वर्षों में ससुर भी सिधार गये। एकमात्र जीवित वंशधर अभिजीत अपने बाप-दादे की धन-सम्पत्ति पर अधिकार जमाता तब महामाया क्या करती यह कहना कठिन है। हो सकता है काशी के मकान में अपनी सारी जिन्दगी बिता देती—इस

परिवार की विधवाएँ जो आज तक करती आयी हैं। पर उनके जीवन की धारा मुड़ गयी दूसरी ओर। अनिच्छा पूर्वक और अनजाने में ही धीरे-धीरे जमींदारी जटिल-जाल में फँसती गयी। उस जाल ने जब ऐसा रूप धारण किया जिसकी गाँठें खोलनी उनके लिये मुश्किल हो गयी तब लाचार होकर अभिजीत को बुलवाया, वर्ना वे कभी खुद नहीं बुलातीं। जैसे, जिस उम्र में इस परिवार के छोटे लड़के को उसकी माँ की गोद से छीन कर दूर किया गया था, इसे सास की तरह वे भी भूल नहीं सकीं। एक-एक कर जब सभी चले गये, इस विशालपुरी की उदासी उसकी अपनी उदासी बन गयी, तब बहूरानी निरंतर यही सोचती रहीं—काश वह लौट आता! पर लिखने की सोच कर भी लिखा नहीं जब कि यह माँग बनर्जी परिवार के लिये जितनी जरूरी थी उतनी उनके अपने लिये उससे कम नहीं थी। फिर भी बीते इतने वर्षों में वे चुप रहीं।

एक ऐसा अवसर आया जब अभि को उन्हें आने के लिये लिखना ही पड़ा, जिसमें जो ध्वनि थी उसकी उपेक्षा अभिजीत भी नहीं कर सका। अगर यह बात न होती तो वह कदापि अपनी उजड़ी जमींदारी की लाश फूंकने यहाँ न आता।

दुर्गा मोहन यह समझ चुके थे। अपने इस छात्र को वे बचपन में ही पढ़ चुके थे। यह उनकी धारणा थी कि सिर्फ जमींदार वंश की भावना उसके खून में नहीं है। फिर बहुत दिनों बाद जब भेंट हुई तब पहली मुलाकात में ही उन्होंने मान लिया, मन वैसा ही आज भी है—सम्पत्ति से विमुख, निर्लिप्त। बल्कि इतने अरसे तक उसने जो जिन्दगी जी है, उसके प्रभाव और परिवेश ने बनर्जी परिवार के उत्तराधिकारी होने योग्य उसे नहीं रखा है। अंग्रेजी में जिसे कहा जा सकता है मिसफिट। वह मिसफिट है। उसकी आँखों में झाँकने पर, उसकी बातों में डूबने से यह सहज में समझा जा सकता है कि उसके भीतर कोई त्यागी-वैरागी बसा है। यहाँ आने पर उसे कुछ द्विविधा में पड़ना पड़ा है, वह द्विविधा या बन्धन बनर्जी परिवार का नहीं है, उसके पैतृक अट्टालिका के छज्जे, बरामदे और आँगन में जो मीठी-कड़ुवी यादें चिपकी हैं, उसका भी नहीं है, वह बन्धन एक ओर जहाँ अचानक उड़कर आये और जुट कर बैठे शरणार्थी नाम के अजब जीव का है, वहीं दूसरी ओर हैं बहूरानी का। लेकिन ये भी उन्हें सदा बांध कर रख नहीं सकेंगें। उसके अन्दर बसा वैरागी कब जाग उठेगा शायद उसे खुद भी नहीं मालूम। मगर भीतर ही भीतर उसकी प्रक्रिया चल रही है। यह बात नहीं थी तो इसमें जोर की जरूरत क्यों पड़ी? इस विषय में वह एड़ी-चोटी का पसीना एक कर रहा है इसका मतलब क्या है क्या उसका यह सोचना नहीं कि वह कैसे यहाँ से आजाद हो।

परन्तु अभिजीत के अनजान होने पर भी दुर्गा मोहन जानते हैं कि सिर्फ एक मैनेजर के ला बैठाने से ही समस्या का समाधान नहीं हो सकता। इस परिवार का अपना एक आदर्श है; उससे बिना जुड़े, बाहर का कोई भी, बाहर का ही रह जायेगा।

बहुत कोशिशों के बवजूद भी वह अभिजीत के सोचे-विचारे को पूरा नही कर सकेगा। बनर्जी परिवार को भी उसके पीछे रहना ही होगा । आधार होगा तभी न सुधार होगा।

बहूरानी को छोड कर भला कौन है इस विस्तार मे ?

इसलिये दुर्गा मोहन ने उसे शुरू से ही बांध रखना चाहा था ताकि अपने बनारसी सेवक-सहचर को लेकर अभि किसी दिन निकल भागे तो यहाँ कोई रिक्तता पैदा न हो।

हेडमास्टर के प्रस्ताव का अभिजीत ने पूरे मन से अनुमोदन किया था,-कहना उचित नही होगा। वह भी तो यही चाहता था । बहूरानी जैसे बनर्जी परिवार को सँभालती आ रही हैं, सँभालें । वह तो आया है सिर्फ कुछ दिनों के लिये, उन्होंने बुलाया, वह आ गया बस, अपने मन की यह बात एक दिन दुर्गा मोहन जी को वह बता चुका है। बल्कि उन्होंने ही कहा था कि—"उनका होकर भी तो सोचना होगा। विधवा बेचारी, जिसकी गोद भी नही भरी, वे भला क्यों जिन्दगी भर इस झंझट मे किस लिये उलझी रहे ?"

इसका कोई जवाब नही है। इसलिये अभिजीत को उस दिन चुप रह जाना पड़ा था। आज उन्ही मास्टर जी का जब स्वर भिन्न मिला तो मन ही मन अचरज मे डूबे बिना नही रह सका, मगर सभी शंकाओं को अप्रत्याशित खुशियो ने ढँक दिया।

'महिला मैनेजर' के बारे मे महामाया का मनोभाव अनुकूल होगा इसमें अभिजीत को संदेह था, अचरज भी। महामाया ने बोर्ड मे रहना मंजूर नही किया। मास्टर साहब के अनुरोध के बावजूद भी। अभिजीत के उत्साह मे कुछ कमी आयी। उसने सोच लिया, इस काम मे बहूरानी का मन नही है सिर्फ वे देवर की इच्छा रख रही हैं। दुर्गा मोहन ने उसके उतरे चेहरे को देख कर समझ लिया। बोले, "कुछ सोचो नही। विधाता हमारे दाँये है। अभी हारने पर भी अन्त मे जीत हमारी ही होगी।"

फिर अभिजीत भी आँखो मे झाँक कर बोले, "तुम्हे पता है ? 'उत्सुकता' का भाव अपने सृष्टिकर्ता ने थोडा-बहुत हर किसी के मन मे दिया है । मतलब हम लोगों को कम, उनके लिये अधिक। खास कर अपने सबध मे बेरोक-टोक। एक स्त्री दूसरी स्त्री के सबध में तटस्थ रहेगी इसमे सोचने को क्या बात है। जब कि हम कैंडिडेट की पढाई-लिखाई काम-काज या घर के बारे मे जानकारी प्राप्त करेंगे, वहाँ वे उसके मन के भीतर बैठ जायेंगी, इसका प्रमाण तो अभी ही मिल गया। सुना नही ? वह कुँवारी है या विवाहिता, कहाँ रहेगी—आदि मे अभी से ही सिर खपाने लगी हैं।"

हलधर जब निहार को बुलाकर मकान के भीतर ले गया, तब दुर्गा मोहन ने

अभि ओर की देख कर अर्थपूर्ण हँसी हँसते हुए कहा, "देख लिया न ?"

"नाश्ते के लिये ।"

"ओहो, यह नाश्ता ही तो सब कुछ होता है । इस संबंध में पूरब-पश्चिम में कोई खास फर्क नहीं है । यूरप अमेरिका में कूटनीतिक बातों के लिये लंच या डिनर टेबुल ही उपयुक्त स्थान है । आफिस मतलब दफ्तर नहीं । इसी प्रकार अपने यहाँ है नाश्ता या भोजन । चबाये बिना रसना-रस का आनन्द नहीं मिलता । खास कर नये मेहमानों के साथ । बहूरानी यह जानती हैं । हम लोग पुराने होते हुए भी 'इतर जन' ठहरे, यानी—" यह कहते न कहते बड़ी-सी थाली लिये हुए हलधर का प्रवेश हुआ ।

दुर्गा मोहन जी की इच्छा थी कि एक बार वे बहूरानी से मिल लें । इसी बहाने से उनका मनोभाव जान लें । पर उधर नाश्ता करते-कराते साँझ हो जायेगी इसलिये वे चले गये । अभि को समझा गये कि संभव हो तो बहूरानी से बात छेड़ कर अन्दाज लगाये । यानी जरा ठोंक बजा ले । अभि भी कम उत्सुक नहीं था । मगर अपनी तरफ से बात छेड़ने की नौबत नहीं आयी । साँझ के बाद घूम-फिर कर बहूरानी उसके कमरे में आयीं और उन्होंने सबसे पहले यही पूछा, "कैसी लगी ?"

"यही तो मैं पूछने वाला था ।"

बहूरानी पल भर की खामोशी के बाद, जैसे अपने आप से ही बोलीं, "लड़की भली है ।"

"लड़की तो भली है, लेकिन मैनेजर कैसी होगी, यह सोच कर बताओ ।"

"यह सब मेरे सोचने की बात नहीं है । मैंने सिर्फ लड़की को देखा ।"

"बस ? तो इतनी देर तक तुम लोग क्या बातें करती रहीं ?"

"बहुत सारी । वह तुम नहीं समझ सकोगे ।"

दाहिने हाथ की उँगलियाँ निराशापूर्वक फैला कर अभिजीत उदास स्वर में बोला, "तो फायदा क्या हुआ ! मैंने सोचा था तुम कुछ मदद करोगी ।"

बहूरानी जरा आगे बढ़ अभि की पीठ पर हाथ रख कर बोलीं, "करूँगी मदद, जरूर करूँगी । मेरी जहाँ जरूरत होगी वहाँ मैं खुद आगे आऊँगी । अब बताओ तुम्हें कैसी लगी ?"

"हमलोगों को तो कुल मिला कर अच्छी ही लगी ।"

"बस, फिर क्या है !"

८

दफ्तर अब नहीं लगता । मगर दफ्तर वाले कमरे में किसी प्रकार का रद्दोबदल

भी नहीं हुआ । एक तरफ है वही गद्दी, उस पर बड़े-बड़े गावतकिये, गाढ़े लाल मखमल के ऊपर भीने मलमल का ओढ़ाव । पहले रोज बदला जाता था, अब तीन-चार दिनों के बाद । पर झाड़-पोंछ रोज ही होती है । साँझ-सवेरे बत्ती जलती, धूप दिखाया जाता । मालिक का वह चाँदी का गड़गड़ा जस का तस रखा है, जहाँ का तहाँ । रोज घिसाई-मजाई से चकाचक ।

इसके लिये बहूरानी का आदेश है । खुद यहाँ वे नही आती, लेकिन हलधर से प्रायः पूछती रहती हैं—"सदर महल मे गया था ?"

"यहीं तो, अभी ही सब साफ-धाफ करके आया ।"

सदर महल अब दफ्तर-कमरे को ही कहा जाता है । और तो सभी कमरे बन्द पड़े हैं । सिर्फ कोने वाले कमरे मे कई कर्मचारी बैठते हैं । इस बीच एक कमरा और खुल गया है, छोटे बाबू के लिये, आधुनिक ढग से मेज कुर्सियो से सजा, जिसकी सफाई किशन करता है । हलधर पर ऊपर के सभी काम का जिम्मा है पर बहूरानी के खास हुक्म से उसे दफ्तर की ओर भी ध्यान रखना पड़ता है । जैसे यही बनर्जी परिवार का प्रतीक है । यही उसका पुरातन रूप आज भी कायम है । जिसे कायम रखना ही होगा—बहूरानी के आदेश का अर्न्तनिहित अर्थ शायद यही है ।

उसके ठीक बगल वाले कमरे मे, जहाँ इन्द्रजीत बैठते थे, उसमे ताला जो बन्द हुआ सो बन्द ही है । बनर्जी परिवार के इतिहास में उसका भी महत्व कम नही है । मालिक के जीवित रहते हुए जमीदार के प्रशासन मे बहुत कुछ दखल उनकी इच्छा-अनिच्छा से वहाँ चला गया था । जिसका उपयोग भी मालिक की अपेक्षा नही रखता था । पुराने जमाने के सभी यह जानते हैं । हलधर भी अजाना नही है । इन्द्रजीत जब जीवित थे, वह इस कमरे मे आया है, बहुत कुछ देखा भी है । वह भी तो दफ्तर का ही कमरा है । बड़े बाबू वहाँ बैठते थे, फिर भी कभी उसे खोला नहीं जाता, न झाड़ा-बुहारा जाता है । बहूरानी भी इस सबध मे कुछ नहीं कहती । यह सब कुछ कभी-कभार उसे बड़ा अजब-सा लगता है ।

एक दिन उसके मन मे जाने क्या आया । बहूरानी से इस कमरे की चाभी माँगने गया, बोला, "बड़े बाबू के कमरे की चाभी भी दीजिये । बहुत दिनो से सफाई नही हुई है ।"

बहूरानी कही जा रही थी, ठमक गयी । उनके पूरे मुखड़े पर जाने क्यो शोक-संतप्त छाया घिर आयी । कई क्षणो तक घिरी रही । फिर आते हुए सहज स्वर मे बोली, "ठीक है, बाद को कभी कर लेना । चाभी कहीं रखी हैं, ढूंढनी पड़ेगी ।"

हलधर ने समझा, कारण कुछ भी हो, बहूरानी टाल गयी । चाभी ढूंढना कोई समस्या नही हो सकती । हो भी तो उसका समाधान फौरन हो सकता था । सिर्फ वे

हुक्म दे देतीं, फिर तो ढूंढ़ना उसका काम था। उसके लिये वहूरानी को परेशान होना नहीं पड़ता।

कारण वही है, जिसके लिये वहूरानी वड़े वावू का कमरा खोलना नहीं चाहतीं, हलधर की छोटी वुद्धि से वह जानने की वात नहीं है। मगर इससे वड़ी वुद्धि वाले भी इस कारण से कभी अवगत नहीं हो सकेंगे। दूसरों की कौन कहे, वहूरानी खुद भी क्या अपने मन की वात जानती हैं ? यह क्या उनकी जिद है या शिकायत ? पति से मिले अवज्ञा-मिश्रित स्नेह को उन्होंने संवल मान कर अपनी पूरी तरुणाई इस विशाल अट्टालिका के सूने अन्तःपुर की शोभा वनी रहीं, उससे इसका क्या संवंध है ? या यह जवर्दस्ती वुलावा भेज कर वुलाई गयी अकाल मृत्यु की निर्मम स्मृति की निर्ममता को भूलने का व्यर्थ प्रयत्न है ? जो चोट वह दे गया है, उसे छिपाने की व्यर्थ चेष्टा ? और हो सकता है, यह एक तरह का विरोध भी हो। पति के इस दफ्तर वाले कमरे को वहूरानी स्वीकृति देना नहीं चाहतीं। उसमें जुड़ी है, उद्दंडता, उच्छृंखलता, दम्भ, पिता के प्रति उपेक्षा, उनकी आकांक्षा के विरुद्ध विद्रोह। वह सव अनाचार छिपा रहे, इस वन्द कमरे के अंधेरे में, मिट जाये अवहेलना, अस्वीकार और विस्मृति का अन्तराल।

फिर कभी भी हलधर ने इस कमरे की चाभी उनसे नहीं माँगी, और न ही वहूरानी को ही उसे ढूंढ़ने की फुरसत मिली।

और लंवे दिनों वाद यह स्थिति आयी कि हलधर को इसके लिये वहूरानी के पास जाना पड़ा। वह जरा घवराता हुआ वोला, "वहूजी, वड़े वावू के दफ्तर वाले कमरे की चाभी कहां है ?"

"क्यों ?"

"छोटे वावू माँग रहे हैं।"

इस 'क्यों' को ही वहूरानी दोहराने वाली थीं कि उनके मन में जाने क्या आया कि वे रुक गयीं। हलधर से ही यह पता चला कि नये मैनेजर का दफ्तर वहीं होगा। मेज-कुर्सियां और वहुत-सी चीजें आ गयीं हैं। गद्दी सजाने का हुक्म छोटे वावू ने दे दिया है।

वहूरानी के मुखड़े पर आज कोई परिवर्तन नजर नहीं आया और नहीं उन्होंने कोई सवाल ही किया। चुपचाप उठीं, अपने कमरे में गयीं और हलधर को चाभी थमा दी।

इसी सिलसिले में हलधर ने एक नयी वात और वतायी। वह यह कि उस कमरे में नहाने का भी कमरा वनेगा, एटैच वाथ रूम, ऐसा ही कुछ किशन कह रहा था। छोटे वावू ने काशी में जैसा वनवाया है। उसका सामन भी जल्दी ही आजायेगा।

वहूरानी ने यह सव सुना या नहीं, यह पता नहीं। वे वरामदे में रेलिंग पर हाथ

घरे चुपचाप खड़ी रही। खास महल का कुछ हिस्सा वहाँ से नजर आता है। उधर ही वे देखती रही। हलधर चला गया। बहूरानी को भी बहुत काम था, नौकरानियां उनकी प्रतीक्षा मे होगी, यह जानते हुए भी वे हिली नही। आंखो मे क्यो तो उदासी घिर आयी थी। एक गहरी सांस उन्होने ली, हो सकता है, अनजाने ही। फौरन ही वे सजग हो उठी। बहुत दूर-दूर से जो स्मृतियाँ टुकडे-टुकडे हो कर इकट्ठी हो रही थी, उन्हें दूर हटा कर तपाक से नीचे उतर गयी।

ऊपरी तौर पर बात कुछ वैसी नही लगी। एक कमरे मे कुछ अदल-बदल, नयी चीजो का रखना फिर भी उनके भीतर कही कोई खलबली मच गयी। इस मामूली परिवर्तन के भीतर सदा के लिये खो गया एक कोई, मिट गयी बहुत दिनो की ढेर-सारी स्मृतियाँ।

मैनेजर कहाँ बैठे, इस विषय मे कल ही तो अमितीन से बातें हुई हैं। बहूरानी का कहना था, बीच की कोठी के किसी एक कमरे मे। उन्होने कहा था, तो कभी-कभार मैं भी उसके दफ्तर मे साथ-सग बैठ कर अड्डा जमा सकूँगी या वह जब फुर्सत मे होगी तब उसे भी हम अपने चौके-चूल्हे के दफ्तर मे घसीट लाऊँगी।

अमिजीत को चिन्तित देख कर उन्होने आगे कहा, "कोई दिक्कत है क्या ?"

"मेरी तरफ से कुछ नही। मैनेजर अगर तुम्हारे अडर मे रखूं तब तो मेरा पौबारा ही है। मगर—"

मुस्कुरा कर बहूरानी के मुखडे पर नजर गडाकर बोला, "तुम्हारा यह शम्भूचरण एण्ड कम्पनी जब डेपुटेशन लेकर आयेगा या जुलूस —।"

"माफ करो भई, मैं बाज आयी ऐसे अड्डे से। तुम उसे अपने खास महल मे ही कही ले जाकर बैठाओ।"

कहो से बहूरानी का अभिप्राय इस कमरे से नही था, उस कमरे का अपना एक इतिहास है, अमिजीत ने यह भी नही सोचा।

उधर नये मैनेजर की नियुक्ति की खबर डाल से पात-पात मे और रग मे रगीन होकर समयानुसार कॉलोनी में फैल ही नही गयी बल्कि चर्चा का विषय बन गयी। उसमे, स्वभावत व्यग का पुट अधिक था। कर्ज, सहायता आदि के लिये सरकारी दफ्तर में कॉलोनी के लोगो का आना-जाना लगा ही रहता था। वहाँ पक्तिबद्ध कुर्सियो-मेजो मे से किसी एक पर महिला को बैठे देख कर पहले वे लोग चौक उठे थे। अब वे चौकते नही। पहले पहल आंखे-फाड़-फाड कर देखते कि मर्दों मे घिरी एक युवती सिर झुकाये फाउटन पेन से क्या सब लिख रही है मोटी-मोटी बहियो के पन्नो पर, मनोयोग पूर्वक। नजर कभी भी इधर-उधर उठनी नही। सहकर्मी आपस मे हँसी-मजाक करते,

चाय पीते, सिगरेट खींचते और यह अकेली लड़की बिल्कुल गुमसुम। सिर्फ काम और काम।

यह सब अब उन लोगों को आकर्षित नहीं करता। वे एक नजर डाल कर आगे बढ़ जाते हैं। पहले इस पर आपस में खूब फब्तियाँ कसी जाती थीं। जवान लड़के इस काम करने वाली लड़की को हिरोइन मान कर मन ही मन रोमांटिक उपन्यास का मजा लेते थे। अब यह कोई 'बात' नहीं रही। अगर किसी ने आकर खबर दी कि खाद्य विभाग में दो लड़कियाँ और आ गयी हैं, तो कोई उत्साह नहीं दिखाता। यह भी कोई बात नहीं रही अब।

लेकिन यहाँ की बात और है। प्राचीन काल के जमींदार; जिनके परिवार की नारी आज भी लोगों के सामने नहीं होती उन्हीं के दफ्तर में काम करने को रखी गयी है एक लड़की, वह भी बुढ़िया नहीं, युवती। निहार जिस दिन इंटरव्यू देने आयी थी, उसी दिन किसी-किसी की निगाह उस पर पड़ी थी। यह एक अचरज की बात थी—कान में मक्खी घुस जाये और फड़फड़ाये नहीं! 'कौन है यह लड़की?' यह सवाल मर्द-औरत, बूढ़े-बच्चे सभी के शोध का विषय बन गया था—दाल में कुछ काला है! बात कुछ है, वह बात क्या हो सकती है, इस बारे में मतभेद था। नौजवानों ने स्वाभाविक तौर पर यह सोच लिया था कि नये मालिक और नये मैनेजर में जरूर कुछ मामला है, जो नया नहीं है और वह भी सिर्फ नौकरी का माजरा ही नहीं है। बड़े और बूढ़ों में बातें होतीं; "इसमें कोई भेद जरूर है। यह 'छोटे बाबू' बाहर से जैसा भला दीखता है, वह अन्दर से वैसा नहीं है। कुछ भी कहो, आखिर है तो वह जमींदार का ही लड़का!-एक लड़की को मैनेजर बना कर हो सकता है कोई मतलब गाँठना चाहते हों और नहीं तो क्या जो कट्टर नायब से नहीं सधा, वह''' मतलब शुरू से ही सतर्क रहने की जरूरत है।"

शम्भूचरण के मन में यह शंका नहीं उत्पन्न हुई, यह बात नहीं। मगर जब दो बुजुर्गों ने उसे इस ओर इशारा किया तो उसने हँस कर टाल जाना चाहा—

"आप लोग तो हर बात में संदेह करते हैं। उनकी इच्छा जिसे मैनेजर बनायें। इससे हमारा क्या?"

"नहीं बेटे", गर्दन डुलाते हुए बूढ़ों में से एक ने अपना मत गंभीरता से व्यक्त किया, "मेहरारू की जात का बिसुवास नहीं। वह सब कर सकती है। जमींदार खुद जो नहीं कर सकता—जरा लाज है न—इस मेहरारू से करा लेगा। उसकी आँख में शील जो नहीं है।"

शम्भू ने ऐसी किसी संभावना पर ध्यान नहीं दिया। दूसरी बातें छेड़कर इस प्रसंग को हल्का बना दिया, "सुनिये, यह चर्चा बड़की माँ तक न पहुँचे। योंही—"

"काहे ? पहुँचे भी तो क्या होगा ? बडकी-माँ मेरा का कर लेंगी ? जर-जमीन लुटा आये तो क्या अपने परिवार को वश में करने की ताकत भी हम खो बैठे ?"

इसमें वह चतुर है यह उसके साथी ने भी मंजूर किया। कहा, "यह तो तुम्हारे जाती दुश्मन भी कह सकते हैं। कॉलोनी के सभी लोग यह जानते हैं, मानते हैं। क्यों शभू ?"

"यह सब छोडो। घर-परिवार की जलन सभी को है। इससे क्या मतलब ? यह मैनेजर छोकरिया के आने से हम लोगो का क्या कैसा हाल होगा यह भी सोचो। तुम जाओगे वहाँ क्या ?"

"कहाँ ?"

"उसी छोकरी के पास।"

"किसलिये ? हम लोगो को जो करना होगा, वह सीधा मालिक से करेंगे। वहाँ एक बार जाया जा सकता है।"

बूढे इससे सहमत हुए।

इतने दिनो से ये बनर्जी परिवार की परती जमीन में घर बनाकर रह रहे हैं। पर कानूनन उनका कोई अधिकार नही है। वे जबर्दस्ती दखलदार हैं। यह ये भी जानते हैं और मालिक पक्ष भी बराबर यही महसूस करता रहा है। इनके विरुद्ध अनधिकार दखल का मामला दायर हो चुका है। इन लोगो ने अपने पक्ष मे समर्थन पाने की चेष्टा नही की। शायद कचहरी के आदेश पर ही पुलिस इन्हें उजाडने के लिए आयी। लोगो मे सरगर्मी आयी। पर गडबडी नही मची। मचने नही दी नेताओ ने। खासकर शभू-चरण ने। पुलिस को साफ-साफ कह दिया गया—वे नही हटेंगे, नही उठेंगे। घर-द्वार तोड-उजाड दो, चीजे नाश कर दो, फिर भी वे यह जगह नही छोडेंगे। पुलिस आगे नही बढी। लौट गयी। शायद यही सरकारी नीति रही हो, जब कि बल-प्रयोग की घटना उस दिन कम नही घटी।

यहाँ जो मालिक पक्ष के लोग हैं वे भी दगा-हगामा नही चाहते। नायब चाहते थे कानून की सहायता से अनधिकार दखल के विरुद्ध अपना अधिकार लेना। जमीन का उद्धार करना। बहूरानी की भी मशा यही थी।

इसके बाद से फिर इन्हे उठाने या हटाने की कोशिश नही हुई। ये मौज से रह रहे हैं। इसका मतलब यह भी नही है कि मालिक पक्ष ने इस दखल को मान लिया है। लेकिन कोई अघटन नही घटा, मगर कोई सद्भाव भी नही बढा। दोनो तरफ गुस्सा जमा होता रहा है, जमती रही दुर्घटनाएँ, अविश्वास भीतर ही भीतर शीत-युद्ध जारी है।

कालोनी के बाशिन्दे इस विषय मे निश्चित है कि उनके हटने की कोई गुंजायश नही है, जबर्दस्ती दखल होने पर भी स्थायी दखल है। पर इससे वे खुश नही थे। वे चाहते थे अधिकार। जो जमीन उनके कब्जे मे आ गयी है, उस पर वे मलिकाना अधिकार

चाहते हैं। यहाँ हम रह रहे हैं, कोई हमें हटायेगा नहीं, यही पर्याप्त नहीं है, जब तक हमारा हक मन्जूर नहीं होता, न निश्चिन्त होंगे, न हो सकते हैं। विपद मुक्त रहकर भी इसलिये कालोनी का आज मन चिन्तामुक्त नहीं है। छोटे-बड़े सभी किसी एक समझौते के लिए इच्छुक हैं। वह ढुलमुल हालत और कितने दिन चलेगी ?

कॉलोनी में मास्टर साहब नाम के बूढ़े व्यक्ति को वहाँ के निवासी जानते नहीं थे ऐसी बात नहीं। मगर उनके बारे में वे उतनी दिलचस्पी नहीं रखते थे। बस शम्भू से उनकी मामूली सी जान पहचान थी। जमींदार परिवार से उनका कोई संपर्क है, इतना वे नहीं जानते थे। यों ऐसा संपर्क था भी नहीं। यह तो अभिजीत के आने से ही हुआ।

मास्टर के घर अभिजीत का आना-जाना उनकी आँख-ओट नहीं था। सड़क तो गंगा किनारे से ही निकली थी और वहीं अभागे कालोनी के लोगों का जमाव होता। शंभूचरण ने भी देखा था पर इसे इतना महत्व नहीं दिया। अभि कभी उन्हीं के स्कूल में पढ़ा भी था, और जब यहाँ आया तो अपने पुराने गुरु से मिलना-जुलना व्यावहारिक सौजन्यता के सिवा और क्या हो सकता है।

दूसरों के विषय में खोज खबर रखना, गांव जवार का सदा से उत्कट अभिप्राय रहा है और कॉलोनी के लोगों का और भी अधिक। कर्तव्य के नाम पर यहाँ कुछ नहीं होगा। जब कि अवसर खूब है। अड़ोस-पड़ोस के चूल्हे के अतिरिक्त यहाँ और कौन सी चिन्ता है। अतः दुर्गामोहन तथा अभिजीत का सम्पर्क सिर्फ गुरु-शिष्य का ही नहीं है, कुछ और भी है, इस सच्चाई को समझने में लोगों को देर नहीं लगी। ऊपर से शंभूचरण का यह सन्देह धीरे-धीरे दृढ़ होता गया कि अब जमींदार पक्ष की पॉलिसी निर्धारण का असली स्थान है रिटायर्ड हेडमास्टर का बैठका।

इस विषय में स्थिर मत होकर ही उसने पिछले दिनों हेडमास्टर की शरण ली थी। उन्होंने भी उसे टाला नहीं था, अपने भरसक उसे सहायता का आश्वासन दिया और साथ ही उन्होंने शंभूचरण को सलाह भी दी थी, "अभि से मिल कर साफ-साफ बातें करिये।"

उनके बीच जब वह चर्चा चल रही थी कि उनसे मिलने कौन-कौन जायेगा, क्या माँगें होंगी, कैसे प्रश्न को उपस्थित किया जायेगा—तभी इस नये मैनेजर की खबर फैली थी। कॉलोनी में एक नयी सजगता आ गयी। असली उद्देश्य से भटक कर उनका ध्यान उस ओर केन्द्रित हो गया था।

शम्भूचरण ने अफवाहों को दब जाने के लिये कुछ वक्त गुजरने दिया और फिर यह तय किया कि पहले वह अभिजीत से अकेले ही मिलेगा।

अभिजीत अपने आफिस में ही था। बाहर से आवाज आई कि फौरन कहा, "आइये, अन्दर आ जाइये।"

शम्भू ने भीतर प्रवेश करते ही देखा, मेज की बगल मे एक युवती बैठी है। अभिजीत मुस्कराता हुआ बोला, "आप लोगो का परिचय करा दें। ये हैं अपने निहार चटर्जी, अपने स्टेट की मैनेजर। और ये हैं, श्री शम्भूचरण—।"

अभिजीत के अचानक रुकते ही शम्भू ने कहा, "सरकार।"

अभिजीत जरा झेंपा, बोला, "उस दिन आपके नाम के साथ जो जुडा है वह सुना तो जरुर था लेकिन हठात् याद नही आया। अभी-अभी आपकी ही चर्चा चल रही थी।"

अन्तिम बातें निहार के अभिप्राय से कही गयी थी।

परिचय होने के साथ-साथ निहार ने मुस्कराकर शम्भूचरण को नमस्कार किया। शम्भूचरण अचानक इस सम्मान से उंमझुम मे पडा रहकर जैसे-तैसे दोनो हाथ जोडकर मस्तक तक ले गया। भीतर ही भीतर वह घबराया सा लगा।

वह अभिजीत से मिलने आया था यो मैनेजर से मिलने की भी लालसा थी। इधर कई दिनो से पूरी कालोनी मे इनकी गरमा-गरम चर्चा थी। पर अचानक भेंट होगी और कि एक भली लडकी उसे इस तरह नमस्कार करेगी, इसकी आशा उसे नही थी।

जान-पहचान तो होनी ही थी और उनकी गरज से ही, यह तो वह जानता ही था, पर इस तरह सामना होगा इसके लिए उसका मन तैयार नही था। वह तो निहार के बारे में सोंचे बैठा था कि वह लडकी होगी मालिक की चापलूसी मे तल्लीन, कॉलोनी के लोगो के प्रति उपेक्षा का भाव रखने वाली।

रिलीफ दफ्तर और दूसरी जगहो मे जैसा वह देखता आया है। एक तरह का आरोपित दुराव का व्यवहार। मर्द कर्मचारी तो मुँह बिगाड कर बात भी कर लेते, कभी सहानुभूति भी दरसाते। सही बातो मे ही सरकारी सीमा का उल्लघन कर लेते, मगर औरतें, बाप रे बाप! अपने चेहरे पर आरोपित गभीरता लपेटे गुमसुम बैठी रहती बातें वे भी करती मगर सरकारी इंच और बटखरे से नाप जोख कर।

निहार लेकिन भिन्न नजर आयी, मुलाकात भी जरा सी देर के लिए। फिर भी इस जवान लडकी का साफ-सहज मन छिपा नही रहा। हाव-भाव मे, मुस्कराहट मे, नमस्ते करने के ढङ्ग मे, विनम्र भाव का प्रभाव शम्भू के मन पर पडे बिना नही रहा। कुछ अपनत्व का भाव भी उसे मिला। वह जैसे मेहमान हो, मित्र हो। और जब कि देखा जाय तो कालोनी और वहाँ के लोग दुश्मन से बदतर थे। वह जब भी सदर नायब से मिलने आया है, वे इसे हीन दृष्टि से देखते रहे हैं। उनका चेहरा तमतमा उठता। गरज कर 'निकल जाओ' तो कहते नही थे। पर दोनो आँखे आग उगलने लगती। वह भी तनकर खडा रहता। दोनो तरफ का सपर्क साफ और सीधा था। इसलिये शम्भू अपनी ओर से कभी द्विविधा और सकोच म नही पडता।

आज मगर शम्भूचरण एक अप्रत्याशित स्थिति मे पड गया और यह सुनकर तो वह चारो खाने चित्त हो गया। "अभी-अभी आपकी ही चर्चा हो रही थी।" पता

नहीं अभिजीत बाबू ने क्या कहा होगा। चाहे जो कहा होगा पर उसके मन पर कैसा प्रभाव पड़ा होगा।

इनकी आपसी बात-चीत में उसका रहना उचित है या अनुचित, जब तक शंभू यह तय करे कि अभिजीत बोला, "खड़े क्यों हैं ? बैठिये न।"

उनकी मेज के दाहिनी ओर निहार बैठी थी। उन्होंने बायीं ओर की खाली कुर्सी की ओर मैनेजर के सामने इशारा किया।

शंभू ने सोचा, बोला, "मैं कभी और आ जाजाऊँगा।" मगर घबराहट में वह अपने विचार को शब्द नहीं दे सका। झेंप से भरा आगे बढ़ा और कुर्सी खींचकर बैठ गया। बैठने को तो वह बैठ गया, मगर उसके मन की ग्लानि बनी ही रही। आज के पहले इस कमरे में वह आया जो नहीं था। अभिजीत से मिलने अकेले भी वह पहली बार ही आया था। नायब या और अमलों से वह जब-तब मिलता। जो कचहरी है उस कमरे में उन लोगों ने कभी भी उसे या उसके साथियों को बैठने को कहा हो उसे याद नहीं। वहाँ बैठने के लिये पड़ी रहती थी दरी और उसके सामने दीवाल से सटी कई कुर्सियाँ।

शंभू को बिना कहे ही जबरदस्ती बैठना पड़ता था। यह मानकर कि यह सरकार के चाकरों को सोहाता नहीं, उन्होंने इसके लिये कभी कुछ कहा नहीं।

आज नायब या गुमास्ते बीच में नहीं थे। खुद इस स्टेट के मालिक ने अपनी बगल की कुर्सी की ओर इशारा कर आग्रह से कहा, 'बैठिये', इतना परिवर्तन ! वह कुछ सोच नहीं पाया। बैठने के बाद मन की गाँठ कुछ ढीली जरूर हुई। चुप्पी अभिजीत ने ही तोड़ी, "सुनाइये क्या हाल है।"

"हम लोगों का हाल और क्या हो सकता है भला ! आप से मिलने चला आया।"

"अच्छा ही किया। अपनी इस कॉलोनी के विषय में ही हम लोग बातें कर रहे थे। आप मौके से आ गये। अच्छा यह बता दूं कि इसके बाद आप लोगों को जो भी कहना-सुनना हो, करना-धरना हो, उसके लिये मेरी जरूरत नहीं। सब कुछ इन्हें ही समझें-समझायें।"

पलकों के इशारे से उन्होंने निहार को संबोधित किया। उनके इशारे पर शंभू ने भी निहार की ओर देखा। निहार बिना पलक उठाये ओठों में ही मुस्कराई। यों लगा, इसका कोई मतलब नहीं है, सिर्फ मालिक की मर्जी है। सभी मालिक अपने कर्मचारियों को इसी प्रकार सम्मान देते हैं। इसका मतलब यह कदापि नहीं कि उन्होंने अपना सारा हक उसे दे दिया हो।

अभिजीत ने कहा, "ये लेकिन आपके इलाके की ही हैं ? बातों से पता नहीं

चलता मगर आप लोगों के संग मे गाँव-जवार की बोली मे ही बोलेंगी। क्यो मिस चटर्जी ? आपका गाँव वहाँ था ?"

हँसकर निहार से पूछा। उत्तर मे निहार के ओठों पर हँसी नही निखरी। निहार ने बनावटी हँसी हँसकर कहा, "नोआखाली।"

"आपका घर भी क्या वही था ?" अब अभिजीत शम्भू की ओर मुड़े।

"जी नही, मेरा देश था फरीदपुर। मगर नोआखाली के कुछ लोग अपने साथ हैं।"

यह सुनते ही निहार चौंक उठी, पलकें उभरी और फौरन नम गयी। दोनों मे से किसी ने नही देखा। अभिजीत ने कहा, "खैर, मैं यो उधर का कुछ नही जानता, उधर का ही क्यो, इधर के विषय मे भी मेरी जानकारी बहुत कम है। बचपन से ही बाहर रहना पड़ा। मिस चटर्जी को पद्मा नदी के इस ओर उस पार की यानी बंगला देश की पूरी जानकारी है। यह दोनो के लिये अच्छा है।"

निहार और शम्भू दोनो चुप। अभिजीत कई पल उत्तर की प्रतिक्षा मे बैठे रहे फिर शम्भू से बोले, "तो आप लोग बाते शुरू करिये। यहाँ भी अपनी बातें आप कर सकते हैं। अब मैं चलूँगा, या मिस चटर्जी अच्छा हो आप इन्हे अपने कमरे में ही—"

बीच मे ही शम्भू बोला, "आज छोड़िये, फिर किसी दिन आ जाउँगा।" और वह उठ खड़ा हुआ तथा नमस्कार करने के लिये दोनो हाथ उठाते हुए बाहर निकल गया। बाहर आया तो उसे महसूस हुआ कि एक कठिन परीक्षा से मुक्ति मिली। एक लड़की से अकेले मे बातें करने का साहस अभी उसे नही है। अपने आपको संतोष देने के लिये उसने सोचा—यह कोई कमजोरी नही है, बल्कि इसके लिये वह पहले से तैयार होकर नही आया था। आज तो सिर्फ उसे जानना था, नयी स्थितियो के बारे मे। इधर की हवा क्या है ? परन्तु अभिजीत यदि अकेला होता तो बिना कुछ बात किये 'आज छोड़िये' कहकर वह चला न आता। यह बात मन मे उठी कि उसे फौरन दबा दिया, लेकिन वह बात खटकती रही। उसके लिये यह एक तरह से हार थी। उस लड़की ने यह जरूर सोच लिया होगा कि वह भगोड़ा है, हो सकता है कि वह मन ही मन हँस भी रही होगी।

सड़क पर चलते हुए वह तन कर खड़ा हो गया, जैसे निहार उसके सामने खड़ी हो। कमजोरी, कमजोरी से काम नही चलेगा। यह बराबर याद रखना पड़ेगा कि मैं उनका दुश्मन हूँ और उसकी एकमात्र भूमिका हावी है—लड़ाई के लिये अपने को प्रस्तुत रखना। इतने सारे लोगो की जिन्दगी का सवाल है। जिनका पहला काम है इस कॉलोनी पर कब्जा करना। किसी लड़की को मैनेजर बनाना इसमे मालिक की चाल भी हो सकती है। होगी ही। कॉलोनी के कुछ लोगो की धारणा ऐसी ही है—इसे भी बदलनी होगी।

इस क्षण शंभू का मन शंकालु हो उठा। अभिजीत सब कुछ इस मैनेजर के ऊपर छोड़कर खुद अलग क्यों हटना चाहता है? शायद उसने सोचा हो कि एक लड़की के आगे हम लोगों की दाल नहीं गलेगी। मधुर मुस्कान और मीठी बातों से वे अपना स्वार्थ सिद्ध कर लेंगे। यह हम नहीं होने देंगे।

अभिजीत बाबू की यह बात भी शंभू को जँची नहीं। यही कहना कि यह मैनेजर पूर्व वंग की है यानी अपने देश की है और तब इनकी सहानुभूति मिलेगी ही। इस देश में यहाँ अपना सब कुछ खोकर शरणार्थी होकर आने के बाद से शंभू ने कुछ और ही अनुभव किया है। कितना पापड़ बेलना पड़ा, कितने और कैसे लोगों का दरवाजा खट-खटाना नहीं पड़ा। उनमें से सबसे अधिक निराश किया था उन्होंने ही जो उसके देश के कभी थे, उस पार बेहाल, मतलब तूफान के उठने के पहले ही जिन्हें सीमा पार करने का अवसर मिला था। उनका वहाँ जो कुछ था, बिक गया या इस पार के लोगों से अदल-बदल लिया गया था और जो घर-द्वार रोजी-रोजगार वाले बन बैठे थे उन्हें फायदा न सही नुकसान भी क्या हुआ?

इस दर्जे में आते हैं सरकारी अफसर। उनसे पूछा गया था, "कहाँ का इरादा है।" 'पी' या 'आई'? पाकिस्तान या इन्डिया? हिन्दू अफसरों ने लिखा था 'आई', और इसी तरह मुसलमानों ने लिखा था 'पी'। दोनों दलों का सितारा चमक उठा। 'आई' वाले जब यहाँ आये तो देखा कि एक बड़ा दल 'पी' वाले यहाँ से जा चुके हैं। और चले गये हैं अंग्रेज, पेंशन की मोटी रकम लेकर बहुत से ओहदे और कुर्सियाँ खाली पड़ी हैं। यही तो उन्हें चाहिये। और चटपट प्रमोशन, पदोन्नति, जो नीचे लटके थे और ऊपर चढ़ आये। ऐसे सभी जो रिटायर्ड होने वाले थे वे भी ऊपर और ऊपर उछल आये।

ठीक यही हाल है उस पार के सरकारी ओहदे दारों का। बँटवारे से लाखों लाख बेघर-बार के लोगों को जन्म मिला है, ऐसा कहने वाले दीया के तले का अंधेरा ही देखने वाले हैं। वे यह नहीं जानते कि दीया के ऊपर उजाला होता है, जिसमें चमकते हैं ये, ये बँटवारे के सूत्रधार, यानी दोनों देशों की राजनीती के बड़े-बड़े खिलाड़ी और वे जिन्हें कहा जाता है ब्यूरोक्रेट। इस दल को नेताओं ने कभी अच्छी निगाह से नहीं देखा। फिर भी दरारों में घुस कर ऐसे लोग भी जम गये। शम्भूचरण की भाँति जो लोग मिट्टी की झूठी ममता में या समय से अवसर न मिलने की वजह से, अपनी माटी का मोह नहीं त्याग सके और अपने इस भूल के कारण सहसा बिना पंख के पंछी की तरह भटकते हुए लड़खड़ा कर जगह-कुजगह आ गिरे वे स्वभावतः आशा लगाये बैठे रहे कि उनसे आगे जो आयें, वे सभी किस्मतवर लोग जो यहाँ सहेज सँभाल कर बैठे हैं, वे देश के लोगों को कम से कम नजर उठा कर देखेंगे ही। मगर कुछ दिनों भटकने के

बाद यह पता चला कि उनकी दशा रेल के यात्रियों जैसा है—किसी तरह पहले घुस कर डब्बा दखल कर लो या धक्का देकर डब्बे में घुस आओ, फिर कोई बात नहीं।

गंगा की तरफ से कॉलोनी में घुसने के मुँहाने पर खपरैल छाया, चटाई से घिरा एक छोटा-सा घर है। उस घर में एक तरफ लकड़ी का टेबुल, एक कुर्सी, लालटेन और दूसरी तीनों तरफ की दीवाल से सटी बेंचें पड़ी हैं। यह सब कुछ यहां के मिस्त्रियों के हाथों का बनाया हुआ है। यह है कालोनी का पचायत घर। शम्भूचरण ही प्रायः रोज यहाँ बैठा मिलता है। टेबुल ड्रावर में उसके कागज-पत्र रखे रहते हैं। कभी-कभी यहाँ मिटिंग होती है। वह भी तब, जब वहीं बुलाये। इसके अलावा पाड़ा के लड़कों का यही खास अड्डा है, खास कर जब शम्भूचरण यहाँ नहीं होता।

जमींदार की कचहरी से शम्भू ने लौटकर देखा कि बेंच भरी है। बूढ़ों की संख्या ही अधिक है। इनमें कई छोकरे भी हैं। छोकरों का एक बड़ा दल बाहर भी मँडरा रहा है। हमेशा से जब ये आपस में बात-विचार करते हैं तो लगता है मैं झगड़ रहे हैं। इनकी आवाज स्वभावतः ही सप्तम पर चढ़ी हुई होती है, जैसे बिना जोर से बोले ये अपनी बात कह नहीं सकते। विषय जैसा भी क्यों न हो, बहस इस तरह करेंगे जैसे गले का कम्पीटशन कर रहे हों।

आज भी बातें कुछ इसी तरह हो रही थीं, मगर झगड़े के दायरे में नहीं पहुँची थीं। शम्भू के आते ही सभी चुप हो गये। उसकी ओर उत्सुक दृष्टि से देखने लगे। कुर्सी छोड़ते हैं बड़कू दा। वे बोले, "क्यों भई, नट हुई ?"

शम्भू ने गर्दन हिला कर बताया, "हाँ।"

"क्या ख्याल है ? कुछ कहा सुना— ।"

"जो कुछ होना है मैनेजर के जरिये। वह वहीं थी।"

"जायेगी कहाँ— ।' उनके पोपले मुँह से फटे बेलून से जैसे हवा निकलती है, भक से, वैसे ही हँसी खिल स निकली, और चेहरे पर भी विद्रुप का भाव झलका। कोई बोल उठा," देखने में कैसी है ?" सिर्फ पूछने वाले के ही नहीं बल्कि औरों की शक्ल पर भी यह सवाल शम्भू को झलका मानो उनके लिए और समस्या से अधिक महत्वपूर्ण यह ही है। शम्भू ने कोई जवाब नहीं दिया। चारों तरफ आँखें दौड़ा कर बोला, "जब जमींदार की इच्छा है तो हमलोगों को मैनेजर से ही वास्ता रखने में उच्च बना है, अब उनसे कब मिला जाये आज हम यह तय कर लें। माँगों के बारे में तो एक तरह से हम लोगों ने तय कर ही लिया है। उसकी फेहरिस्त भी बनी हुई है। वहीं उनके रख सामने भर देंगे।"

आज यहाँ पचायत के सभी सदस्य इकट्ठे थे। शम्भू के कहने पर जब किसी ने

कहा, किसी के कुछ कहने की प्रतीक्षा करके तब वह पुनः बोला, "अब यह
प लोग ही करें कि माँगों को लेकर उनसे कौन या कौन-कौन मिले।"

इसके पहले नायब के जमाने में जब भी 'दरबार' की नौबत आयी है, सभी एक
ही शंभू को प्रतिनिधि मान लेते थे, सभी एक साथ कह उठते-भइया तुम्हीं सँभालो,
रे बस का नहीं है। आज लेकिन नजारा कुछ और ही था। सभी एक-दूसरे का मुंह
हारने लगे। उनमें से एक ने हँस कर वनमाली से पूछा, "क्यों भई, जाओ—।"

वनमाली अनिच्छा से बोला, "जब सभी की यही मर्जी है! और जब शंभू भी
चाहते हैं, तो उज्र क्या है।"

एक और का सिर हिला। घर के बाहर छोकरे आपस में सिर फुटौवल कर रहे
थे। उनमें से एक आगे बढ़ कर बोला, "रामू भइया, हम लोगों को भी कुछ कहना है।"

"कहो।"

"अपने क्लब के कुछ मेम्बर भी डेपुटेशन में शामिल किये जायें।"

"क्लब, पर क्लब तो हम लोगों की निजी संस्था है। उससे जमींदार का क्या
लेना-देना?"

"है कैसे नहीं; खेलकूद, पुस्तकालय, सांस्कृतिक कार्यक्रम—"

सब की नजर बचा कर एक क्षीण हँसी शंभू के होंठों पर व्याप गयी।

निहार को काम संभाले लगभग एक माह हो गया। इस बीच बहूरानी से
की मुलाकात सिर्फ एक बार ही हुई। हलधर से उन्होंने बुलवाया था। निहार ने ज
चाहा था कि कब मिले? इस बारे में हलधर को कोई आदेश नहीं था। पर वह
नौकरों में अलग अपनी हस्ती मानता रहा है इस परिवार का पुराना और
नौकर जो ठहरा। इसी गर्व में उसका इतनी मामूली सी बात के लिये अन
दौड़ कर जाना, कोई मानी नहीं रखता। उसने आवाज में वजन भर कर अप
ही कह दिया, "यहाँ का काम खतम करके चली जाइयेगा।" इतना कहने के
अपनी काफी अक्ल खटानी पड़ी थी, यानी यह खुद ही सोच लेना पड़ा था।
ठहरी, कोई ऐरू गैरू तो नहीं जो बुलाहट हुई और दौड़ पड़े।

निहार ऐसा कोई काम नहीं कर रही थी। वह जाने को तो उ
सकती थी, पर गयी एक घंटे बाद, जब घर लौट रही थी, तब एक नौकरा

वहाँ तैनात थी। उसे वह बहूरानी की बैठक मे पहुँचा गयी। इसके थोडी देर बाद ही बहूरानी वहाँ आयीं। बोली, "तुम तो मिलती ही नही। काम बहुत रहता है क्या ?"

निहार हँस कर बोली, "नही काम तो ऐसा कुछ विशेष नही रहता—।"

"तो फिर।"

इस सवाल का जवाब हँसी मे छिप गया।

'तुम' पर बहूरानी पहली मुलाकात मे ही उतर आयी थी, साफ-साफ कह दिया था—'सुन लो भई, आप-वाप मुझसे नही होगा।'

निहार इससे खुश हुई थी। उसने कहा था, "जरूरत क्या है।" बस इतने ही हेल मेल के लिए जितना बहूरानी ने सोच रखा था। निहार लेकिन उतना भी आगे बढने मे हिचक रही थी, क्यो कि वह कुछ बचा कर चलना चाहती थी। फर्क तो रहेगा ही, नयी जो है। यो वे उसे जिस दृष्टि से भी देखे, मगर उसका दर्जा तो एक कर्मचारी का ही है। दोनो के सबधो मे दूरी का होना अनिवार्य था। यह सोचना ही गलत होगा कि इतनी जल्दी आत्मीयता होगी। बहूरानी की ओर से भी यह प्रयत्न नही हुआ था। पर वे माने बैठी थी कि वह कुछ आगे बढे गी, हजार हो, एक लडकी ही ठहरी। यह सोच कर ही उन्होंने उसे अपने पास बुलाया, निहार को, मैनेजर को नही।

असल मे एक सभ्रात कुल की लडकी को 'नौकर' के रूप मे देखने की भावना बहूरानी की आज भी नही है, यो उनके विषय मे सोचने को कुछ भी सोचा जा सकता है। और जो कुछ भी सोचा जा सकता है और जो कुछ प्रत्यक्ष है, वही सत्य नही है। दृष्टि का साक्ष्य मन कभी नही भी मानता है।

बहूरानी दोषी नही हैं। वे थी अति प्राचीन सस्कारो के सरक्षक जमीदार घराने की विधवा पतोहू। आधुनिक समाज मे साँस लेती एक कामकाजी लडकी को मात्र नौकर मान लेना उनके मन मे खटका भी हो पर ऐसो को पारिवारिक माने बिना काम नही चलता। स्कूल कालेज मे पढाने वाली शिक्षिकाओ और इसमे फर्क है। मगर शिक्षिकाएँ छात्राओ के लिए अलका बहन, वरुणा बहन होती हैं, मगर स्कूलो मे शिक्षक भाई नही 'सर' हो जाते हैं। इसी तरह कालेज मे नामो को सक्षिप्त करने के चक्कर मे जिसमे से आत्मीयता ही खो जाती है। हेडमिस्ट्रेस को 'बडी बहनजी' कहने की ही रीति है। वे भी समवत, खुश होती हैं लेकिन हेडमास्टर को 'बडे भाई साहब' कहने से रिश्ते मे कितनी गडबडी पैदा हो जायेगी। किसी महिला छात्रावास की सरक्षिका ओट मे छात्राओ से जितनी भी हँसी मजाक करे मगर प्रत्यक्ष मे वह 'मौसीजी' ही होती हैं। इस ओहदे पर अगर पुरुष हो और वे जितना भी छात्रो को स्नेह दे, उनके प्रति उदार हो, पर 'मौसाजी' नही कहला सकते।

इधर-उधर की कुछ बातो के बाद निहार से बहूरानी ने जब उसके भाई-भावज

पूछने पर पहले दिन ही जो स्थिति उत्पन्न हुई थी, उससे उनके विषय में कुछ और पूछ ने की इच्छा होते हुए भी उन्हों ने नहीं पूछा। इस छोटी उम्र में ही माँ-बाप दोनों को लड़की खो बैठी!—इससे महामाया का कोमल मन स्वभावतः उसके प्रति अनजाने ही द्रवित था। और इस प्रसंग को जब निहार टाल जाती है तो फिर जानने को है ही क्या! बहूरानी ने भी सोचा कि निश्चय ही उन दोनों के मृत्यु-प्रसंग में से किसी एक की भी स्मृति असह्य हो सकती है। जिस वजह से उसे वह भूली रहना चाहती हो, इसलिये आज उनकी चर्चा उन्होंने नहीं की।

एक खास बात के लिये उन्होंने बुलाया था। जब निहार की नियुक्ति का निर्णय नहीं हुआ था, तभी बहूरानी सोच चुकी थीं कि उसके रहने की व्यवस्था उन्हें करनी होगी। वह एक लड़की जो हैं। यही बात सब से पहले उनके मन में उठी कि कलकत्ते से रोज अकेले इतनी दूर जाने-आने में कितना मुश्किल हैं और यहाँ कहाँ आस-पास जगह पाना संभव नहीं और फिर जबकि उनका अपना ही इतना बड़ा मकान खाली पड़ा है जगह की कमी नहीं। खास महल में असुविधा हो सकती है, बीच वाले मकान में तीन कमरा दे दिया जाये तो मजे में वह रह सकती है। रसोई आदि की व्यवस्था भी हो सकती है। नौकर-नौकरानी अपने साथ ले आये तो ठीक वर्ना वे ही जुगाड़ कर देंगी। इच्छा हो, संभव हो तो उसके अपने लोग भी यहाँ साथ रह सकते हैं, कुछ दिनों के लिये या हमेशा भी।

केवल निहार की सुविधाओं को ही बहूरानी ने नहीं सोचा, इस में उनका अपना सुख-स्वार्थ भी निहित है। इस विराट-जनहीन मकान में अकेले रहना एक दिन-दो दिन नहीं बरसों-बरस, कभी-कभी असह्य हो उठता। मन थकान और ऊब से टूट-टूट जाता। इस परिवेश में ही वे जनमती या बचपन से बड़ी होती तो यह सन्नाटा इतना न काटता बल्कि स्वभाव में सहज ही हो जाता। दर असल शुरू से इस सन्नाटे से उनका परिचय नहीं हुआ। वे जिस दिन इस बनर्जी परिवार में आयीं थीं उस दिन चारो तरफ गुलजार था। विवश, बेचारी। हर तरफ भीड़, तरह-तरह के लोगों का जमाव। जाने-अनजाने, आत्मीय-आश्रित, दास-दासियाँ, पाइक-बरकन्दज, चाकर-अमलदार। कितना शोर-गुल काम-धाम, आनन्द-उत्सव, मौज-मस्ती। कितना त्याग, दुःख, पाप, अनाचार—सब कुछ था।

कई बरसों में ही यह सब कुछ बिला-सा गया! पतन की शुरूआत होती है—अभिजीत को जिस दिन यहाँ से हटाया गया काशी। इसके बाद से ही तो, परिवार, घर-द्वार सब कुछ जैसे बेजान होने लगा। हाल (महफिल) जहाँ संगीत समारोह, जश्न और जलसे होते ही रहते थे, दरवाजे पर, अगल-बगल के कमरों में ताला लग गया। नीचे के कचहरी-घर में भी 'उसे बुलाओ, उसे पकड़ कर लाओ', 'यह क्यों नहीं हुआ', कहा-सुनी, दौड़-धूप, सभी कुछ धीरे-धीरे थम ही गया। बीच वाले महल के भीतर हर प्रकार की

एक गहरी उदासी-घर बनाती गयी। नौकर-नौकरानियों का तू तू-मैं मैं, इतने बड़े जमीदार घराने की जो शोभा थी वह भी खत्म हो गयी।

इसके बाद मौत का सिलसिला शुरू हुआ। एक-एक कर कुछ ही दिनो में सब चले गये—मालिक, मालकिन, परिवार का बड़ा लड़का। तब इतने लोग-जन बेकार लगने लगे। दो-दो चार-चार कर बहुतो की छँटाई शुरू हुई। इतनी विशाल अट्टालिका को सन्नाटे ने ग्रस लिया। हर ओर सन्नाटे की भयावह गूंज गूँजने लगी। बहूरानी इसी मे साँस लेती रही और इस असमव को विचारती रही—यह क्या हुआ! वे दिन कहाँ गये। शुरू-शुरू मे तो सब कुछ एक भारी चट्टान-सा लगता रहा। जी करता, 'कही भाग जायें, जिधर जगह मिले उधर ही।' मगर कोई चारा नही था। सब के छोड़ कर चले जाने, मर-बिला जाने के बाद जो जिन्दा रहा उसका बन्धन बहुत भयानक होता है। खास कर जब कोई और नही, अकेली वे ही है, चारो तरफ से यह बधन उसे नही तो और किसे जकडे था।

अभिजीत जो अब आया तो बहूरानी ने राहत की साँस ली। सोचा, इतने दिनो का अकेलापन अब दूर हुआ। अभि केवल उसका देवर ही नही, मन का मनबसिया भी है। जिस दिन वे प्रथम लाल-बहूटी बन कर यहाँ आयी, गरीब किसान के घर का दायरा लाँघ कर इस हरे-भरे जमीदार घराने की विराट अट्टालिका मे, उस दिन उन्हे ऐसा लगा जैसे उनकी दिशाएँ भरमा गयी हैं, वे खो गयी हैं। उस समय जिसके मिलने पर मन मे ढाँढस बँधा था—चलो जान बची, कोई किनारा तो है, वह यह अभिजीत ही था! इस घराने का छोटा लड़का, मगर शर्मीला और सहज। वह भी यहाँ बे-आसरा था। माँ के सिवा वह और कही टिक नही पाता था।

माँ भी उसे कितना मिलती थी—सहमा-सहमा वह बचपन के दिन काटता रहा। बहूरानी ही एक ऐसी मिली, जिसने उसे यह अहसास कराया कि उसका कोई है।

इसके बाद बहुत दिन बीत गये। गगा की धारा बहुत नीचे उतर गयी। सूख गयी। आज का अभिजीत, वह अभिजीत नही रहा, कोई और हो गया। यह ठीक है कि बहूरानी के बुलावे पर ही वह आया है, उनके प्रति सहानुभूति, सहृदयता का भाव आज भी नही मिटा है, इसमे भी सदेह नही, फिर भी दो दिनो बाद ही बहूरानी को लगने लगा कि इसे पकड़ना, बाँधना कठिन है। आने को तो आ गया, पर लौट जाने के लिये कमर कस कर। यहाँ के किसी-कुछ के साथ उसका मन आज भी नही जमा है। अपनी जिम्मेदारी के बारे मे सजग रहते हुए वह इस ताक मे भी है कि कब मौका मिले, अपने बोझ किसी के कन्धे पर डाल कर फुर्र हो जाय। वह मैनेजर लड़की आखिर रखी क्यों गयी? जिस दिन से वह काम मे लगी है, उसी दिन से अभि उसे समझाने-सहेजने मे जुटा हुआ है। बहूरानी उसे पाती है सिर्फ भोजन के वक्त। इसका अलाहना कभी बहूरानी ने नही दिया, मन ही मन मसोसती रही। अपने देवर को वे पहचानती तो है

पर कहीं कोई गलत अर्थ तो नहीं लगाता—कहीं नौकर-नौकरानियाँ, अमलदार—कुछ उलटा-सीधा सोच तो नहीं रहे है। सोचते भी हों, कौन जाने, पर उन्हें विश्वास हैं कि मैनेजर को सिखाने-पढ़ाने के सिवा इसका और कोई अर्थ नहीं हो सकता। जिस दिन यह काम पूरा हुआ कि बस, उस दिन काशी के लिये रवाना।

इतना सब कुछ होते हुए भी बहूरानी के मन में सहज-संदेह फुंकारता रहा। अभी उसके सामने जो लड़की बैठी है, उसे वे गौर से, गहराई में उतर-उतर कर देख रही थीं। पहली मुलाकात में ही अच्छी लगी थी। क्यों? यह वे नहीं जानतीं। 'कोई' किसी को अच्छा या बुरा लगता है इसके लिये वह 'कोई' जिम्मेदार नहीं होता, इसका जिम्मेदार है अपना मन, जो-जैसा होता है वही लगता है। इस अच्छाई-बुराई की बुनावट अपनी-अपनी कुशलता पर निर्भर हैं। अपनी भावना के रंगों से कोई किसी को रंग लेता हैं।

बहूरानी भी इस क्षण उस लड़की को मैनेजर के रूप में नहीं, बल्कि अपनी चाह के रूप में देख रही थीं। उनकी इस 'चाह' का रंग ही उसके चेहरे पर छिटका था। उसका चुपचाप आँखें धरती में गड़ाये बैठना ही बहूरानी की चाह को चार चाँद लगा रहा था। आज जो कुछ कहने के लिये उसे बुलाया था, उसके आते ही इरादा बदल गया। पहले देवर से पूछूँ, वे क्या कहते हैं। पर कहने को वे कह बैठीं—' अरे हाँ, निहार, तुम एम काम क्यों नहीं करतीं? ······अच्छा छोड़ो·······।''

निहार ने गर्दन उठायी मगर कुछ बोली नहीं, उसकी आँखों ने यह पूछा, ''क्या छोड़ो।''

बहूरानी ने कहा, ''मैंने सुना है कि तुम्हें आने-जाने में बहुत तकलीफ होती है। घर से ट्राम पर सियालदाह, इसके बाद रेल और यहाँ स्टेशन पर उतर कर रिक्शा और इसी तरह लौटती भी हो। बाप रे बाप, कितना समय लगता होगा और कितनी तकलीफ होती होगी। धूप है, वर्षा है, ठंड है—''

कहते-कहते रुकीं। शायद इसलिये कि निहार क्या कहती है जरा सुनूं, पर वह तो चुप ही बैठी रही। तब बहूरानी भूमिका से हटकर सीधे मूल प्रस्ताव पर आ गयीं, ''यहीं रहा करो।''

निहार बोली, ''कोशिश तो बहुत कर चुकी, कहीं घर मिलता ही नहीं।''

''कहीं घर लेने की जरूरत क्या है?''

निहार ने पलकें उभार कर जिस प्रकार देखा उससे लगा कि वह बहूरानी के कहने का तात्पर्य समझ नहीं पायी। बहूरानी ने पुनः कहा, ''इस मकान में ही रहो, मेरे पास।'' उन्होंने अपनी मंसा जाहिर की, ''मेरे संग रहो। अलग क्यों रहोगी? इतना बड़ा मकान खाली पड़ा है। जिधर जितना कमरा चाहोगी मिल जायेगा। कुछ अदल-बदल भी करने का मन हो तो वह भी हो जायेगा।''

निहार ने झट से कोई उत्तर नहीं दिया। उसे अच्छी तरह याद है कि नौकरी के विज्ञापन में रहने की व्यवस्था का कोई उल्लेख नहीं था और नियुक्ति पत्र में भी इसका कोई जिक्र नहीं है। यह बहूरानी की ही भावना है। इससे नौकरी में अड़चन आ सकती है। मेरा राजी होना गलत हो सकता है। इस दृष्टि से बहूरानी ने शायद न सोचा हो। एक बार मन में आया कि अपनी दिक्कतें उन्हें बता दे लेकिन बहूरानी से आँखें मिलते ही कहा न गया। क्योंकि उनकी आँखों में अपनत्व का एक गहरा आग्रह था। इन्कार करना उनके मन को दुःख पहुँचाना था। और मान भी ले तो कैसे?

'हाँ' और 'ना' के मध्य एक अन्तराल होता है, उसे इसी अन्तराल का आश्रय लेना होगा यानी मौन रहना होगा। मौन हर जगह स्वीकृति का लक्षण ही है, संभवतः नहीं, कभी-कभी यह अनिच्छा का भी द्योतक होता है। बहूरानी का जो जी हो समझें। यह भी हो सकता है कि इच्छा है मगर फौरन हामी कैसे भरें—कुछ सोचने का समय तो चाहिए ही और ऐसा भी वे सोच सकती हैं कि इच्छा नहीं है मगर सामने कहे तो कैसे, पर आखिर कब तक वह इस द्विविधा में उन्हें रख सकेगी! उत्तर तो कुछ न कुछ देना ही होगा।

इस संकट से निहार को हलधर ने उबारा। उसे न तो किसी ने बुलाया और नहीं किसी को इसकी जरूरत थी, फिर भी नाश्ते की तश्तरियाँ (जो नौकरानी दे गयी थी) और गिलास ले जाने के बहाने आ हाजिर हुआ और सामान उठाते-रखते हुए उसने कहा, "छोटे बाबू आपको ढूंढ रहे थे।"

निहार ने जानना चाहा, "मिलने को कहा है क्या?"

"नहीं, कहीं, बाहर से आये, सीधा आपके आफिस में गये फिर फौरन निकल गये।"

और जो कुछ उसने कहा वह अनुमान के आधार पर ही इतनी बुद्धि का परिचय वह बराबर देता रहता है। हलधर बनर्जी घराने का वह साधारण नौकर नहीं, हुक्म तामिल करने से ऊपर भी कुछ भूमिका उसकी है। अवसर पाते ही वह उसका उपयोग किये बिना रहता नहीं।

बहूरानी ने कहा, "किधर गया, देखा तुमने?"

"अपने आफिस की तरफ जाते दीखे।"

"इस समय आफिस में क्या काम हो सकता है? वह नाश्ता कब करेगा भला? जा उसे बुला ला।"

हलधर जाते हुए दरवाजे के पास से ही बोला, "वे तो यहीं आ रहे हैं।"

अभिजीत ड्योढ़ी पर पहुँच कर, निहार को वहाँ देख ठमक गया। बहूरानी ने कहा, "क्यों, आ जाओ।"

"ऊँहूँ, फिर आ जाऊँगा।"

"आखिर क्यों ? आओ, तुम्हारे लिये नाश्ता मँगवाती हूँ।"

"नहीं, सिर्फ चाय।" यह कहते हुए अभिजीत अन्दर आकर एक कुर्सी खींच कर बैठ गया।

"अरे वाह, सिर्फ चाय ! कब के दो कौर खाकर निकले हो।"

"वह अभी भी पेट में जस का तस पड़ा है। तुम्हारे बंगाल का नाश्ते का रिवाज अपने गले नहीं उतरता।"

"यह कह कर छूट नहीं सकते। उसे गले उतारना ही होगा ! अच्छा तुम लोग बातें करो, मैं अभी आयी।"

बहूरानी के जाते ही अभिजीत ने निहार से कहा, "कालोनी की कोई खबर मिली ? कब वे लोग आपसे मिलने आ रहे हैं ?"

"नहीं।"

"दो एक दिन और देख लिया जाये। इसके बाद उनकी प्रतीक्षा न कर हम लोग अपने प्लान के अनुसार खुद आगे बढ़ें। पहले जमीन का सर्वे कराना जरूरी है। यह काम पुराने सर्वेयर से ही हो सकता है। कल पता लगाइये, पता तो अपने पास कहीं लिखा जरूर होगा। लेकिन बहुत दिनों से उसे बुलाया नहीं गया है—।"

"किसे ?" कमरे में आते हुए महामाया ने कहा।

"अपना वही, सर्वेयर।"

"यहाँ भी तुम दफ्तर खोल बैठे ? नहीं भई, यह नहीं चलेगा ! तुम्हारे दफ्तर का दायरा इस खास महल की ड्योढ़ी के बाहर ही रहे। क्यों निहार ?"

निहार सिर्फ हँसी। अभिजीत पता नहीं कुछ कहना चाह रहा था कि बहूरानी की खास नौकरानी मंगला आती दिखी। उसके हाथ में एक तश्तरी थी, उसे तिपाई पर रख कर जब अभिजीत के सामने उसने सरकाया तो वह चौंका, "यह क्या ! मेरे लिये इतना सारा।"

"कितना क्या है, खा लो !" निहार की ओर एक नजर डाल कर तथा ओंठों में मुस्कराती हुई बहूरानी ने कहा, "तुम्हारी मैनेजर इस मामले में तुमसे कम नहीं है। दोनों ही—सिर्फ चाय ?"

"मैंने सिर्फ चाय नहीं कहा था।" निहार बोली, "मुझे पता है, कहने से कोई असर नहीं।"

बहूरानी ने फौरन उत्तर दिया, "हाँ, कहा तो नहीं, पर किया अपने मन का ही न !"

"मैं ठीक इनके उल्टा हूँ। कहने के बावजूद करके दिखाता हूँ—"

अभिजीत खाने लगा तो निहार ने अपनी कलाई में बँधी छोटी-सी घड़ी देख कर बहूरानी से कहा, "मैं अब चलूँ।"

"हूँ, तुम्हे तो ट्रेन पकड़नी है। फुर्सत मिलते ही आ जाया करो। मेरे बुलाने के लिये रुकी मत रहा करो।"

निहार ने गर्दन हिलाकर स्वीकार कर लिया।

उसके जूते की खटखटाहट खत्म होते ही अमि बोला, "कॉलोनी मे इस मैनेजर को लेकर हंगामा मचा हुआ है।"

बहूरानी को वहां की खबरो के लिये कोई उत्सुकता नही। बोली, "उनकी कौन चलाये, कुछ न कुछ तो लगा ही रहता है।"

"पर यह बहुत मजेदार मामला है।"

"हाँ, उनका लीडर यानी शम्भूचरण उस रोज माँग लेकर मेरे पास आया था। मैनेजर से परिचय कराया था और कहा था, "अब से जो कुछ कहना-सुनना हो सब इनसे ही कहा करना। यानी मैनेजर से, सब कुछ का फैसला भी यही करेगी। वह चला गया। तब से ही हंगामा मचा हुआ है। अच्छा हुआ, शम्भू अकेला नही अब डेपुटेशन लेकर आयेगा।"

"यह क्या होता है?"

"चुने गये कुछ लोगो का दल।"

"अच्छा! दल-बल के साथ हो-होल्ला मचाने पर यह लड़की भला सँभालेगी कैसे?"

"छोटा-सा दल पाँच-सात लोगों का, इसके लिये वोट लिया जा रहा है, दल बन रहा है। बेचारा शम्भू मुश्किल मे पड़ गया है। छोड़ो, वे आये न आये। हमें तो अपना काम करना ही है। इसे अब यो ही छोड़ा नही जा सकता। कुछ करना ही होगा। मैंने सोचा है। यही तुम्हे बताने आया था?"

"तुम बताना चाहते हो, मैं सुन लूँगी, पर मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि तुम जो करोगे उसमे मुझे कुछ कहना नही पड़ेगा। जब तक तुम नही थे तब तक नायब जी मुझे 'इसमे उसमे' जोड़ते रहे। मैं उन्हें टाल भी नही सकती थी। वे भी क्या करते, किसके पास जाते? जिस दिन से तुम आये, मेरी छुट्टी हुई।"

"छुट्टी मजूर होगी तब न? सोच लेने से ही तो छुट्टी मिल नही जाती। अच्छा छोड़ो, अब मेरा प्लान सुनो।"

अभिजीत क्षण भर के लिये रुका। यहां आने के कई रोज बाद ही, जिस दिन पहली बार बहूरानी के साथ दूसरे मजिल के हाल के सामने बिछलन वाली खुली छत पर खडे रहकर गगा की ओर देखते हुए वह सिहर उठा था, वह दिन उसे याद है। फैले हुए मैदान मे खपरैल वाले, टीन और फटे टाट से घिरे 'कॉलोनी' के घिनौने घरो ने उसे जो पीड़ा पहुँचाई थी, आज भी सहज नही हो पाई है। एक नजर मे वह था ऊपरी तौर पर देखा गया एक दृश्य। इसके बाद उसके भीतर का रूप जब उसने देखा

था तब उसके मन में सिर्फ यही एक बात बार-बार उठती रही—अब और नहीं। रात को लेटे-लेटे बच्चों की तरह वह सोचता रहा, ऐसा क्यों नहीं हो सकता कि यह नरक रातो-रात स्वर्ग में बदल जाये। कभी सदर नायब यज्ञेश्वर सरकार ने भी, हो सकता है, यही कल्पना की हो। अपने लठैत, पाइक-बरकन्दाज न सही पुलिस तो है, उसकी मदद से इन दखलदारों को बेदखल करने की सोची हो। घरों को तोड़-फोड़कर बचा हुआ कूड़ा अपने लोगों से ही साफ करा लिया जायेगा। अभिजीत की तुलना इनसे कुछ भिन्न है। संकट बरकरार और 'सिर छिपाने' के बहाने जो आफत जमा हो गयी है, उसका सफाया, यानी साँप भी मर जाय लाठी भी न टूटे।

अभिजीत का यह मनोभाव बहूरानी जानती न हों ऐसी बात नहीं थी। वे जानती थीं कि जबर-दखल के जबर हिस्से को उन्हें स्वीकार करना ही पड़ेगा। कभी-कभी वे जानने को यह भी जानती हैं कि बंगाल के बाहर सरकार ने इन्हें बसाने का यहाँ-वहाँ इन्तजाम किया है। साथ ही इन्हें रुपये, रेल—किराया भी दिया जाता है। सरकार के लोग सर-सामान के साथ आते हैं और खुद लारियों में लादकर ले जाते हैं, अपने साथ और उन जगहों में पहुँचा आते हैं। इससे उन्हें कुछ सन्तोष हुआ था। लेकिन जब उन्होंने सुना, 'ये' देश छोड़ कर कहीं जाना नहीं चाहते। किसी कॉलोनी में कुछ लोगों को भेजा गया था लेकिन कुछ दिनों में ही वे गोल बाँध कर लौट आये। लौट तो आये, मगर जो जगह वह छोड़ कर गये थे वह उन्हें नही मिली, तो वे रेलवे स्टेशन, गोदामों, मैदानों जहाँ भी खाली जगह मिली वहाँ फिर से खूँटी-खम्भा गाड़, चट घेर कर जम गये। यह देख कर कोई कहीं से हिलना नहीं चाहता। शंभुचरण एंड पार्टी भी यहाँ से टस-मस नहीं होगी—बुरे से बुरा हाल क्यों न हों—ये यहीं जमे रहेंगे। बहूरानी यह भी जानती हैं कि अभिजीत इस सरकार के सहयोग से इनकी व्यवस्था करने के प्रयत्न में सचेष्ट नहीं है। जहाँ वे यह भी जानती हैं वहीं इसका भी पता है उन्हें कि अभि इन लोगों के लिए बहुत परेशान भी है। ये लोग अच्छी जिन्दगी जियें, वह यही चाहता है। केवल वह सोचता ही नहीं, ऐसी किसी योजना को बनाने में लगा भी है। मगर वह योजना क्या और कैसी है, उसका काम कैसे होगा, इस बारे में वे कुछ न जानती हैं, न जानना चाहती हैं।

अभिजीत बोला, "यह जो जमीन वे दखल किये बैठे हैं, किसी तरह भी कानून से वे नहीं पा सकते, यह जैसे सच है वैसे ही वह हमें वापस मिल जायेगी यह सोचना भी व्यर्थ है।"

"यह तो मैं भी जानती हूँ। कुछ दिनों पहले तक यह लालसा मैं पालती रही, आज भी मिटी नहीं है।"

"वह हमें बट्टे खाते लिख देना होगा। इसका मतलब यह भी नहीं है कि उन

लोगो के नाम लिखी जा चुकी है या लिखो जा सकती है। पचायत के नाम, या कोई ट्रस्ट-फन्ट वन-बना लिया जाये। वे भी शायद इससे अधिक कुछ चाहते नही मगर—"

बहूरानी चुप बैठी रही। अभिजीत मिनट भर बाद उनकी ओर देखता हुआ मुस्कराकर बोला, "तुमसे कहने मे कोई हिचक नही है। मैं खुद निश्चय नही कर पा रहा हूँ—क्या करूँ क्या नही ? इन लोगो के लिये हम सोच कर भी क्या करें ? अपने हाथ मे कुछ करने का है भी तो नही, किया भी क्या जाये ?"

बहूरानी के सामने भी यही सवाल है पर वे चुप रहीं। अभिजीत बोला, "इतने लोगो को नरक मे छोड कर उनकी ओर से मुँह फेरकर बैठा भी नही जाता। यह सही है कि उनकी इस दशा के भागीदार हम नही हैं। हमारी कोई जिम्मेदारी नही है। जिम्मेदार अगर है तो स्टेट। उसकी मशीनरी, जिसे गवर्नमेट कहा जाता है, वही पगु या अकर्मण्य है, लेकिन यह मान कर भी सभी हाथ बाँधे बैठे रहें, यह बात भी कुछ जँचती नही। और अपने घर के सामने यह नरक देखा भी नही जाता।"

बहूरानी को जैसे मजा आ रहा हो—बात तो यही अटकी है। कुछ अशो मे ठीक भी है। बेमतलब अजगर की तरह पडी यह बिना छप्पर-छावनी की बस्ती उसकी आँखो के सामने उसकी सुरुचि सम्पन्नता को सुई चुभोती रहती है। किन्तु उसके मन को चौबीसो घटे जो व्याकुल बनाये है वह घरहीन घेरा नही, उसका असुन्दर तन-मन नही, बल्कि उनके अन्तर मे जीने की जो लालसा की ललक है उसका कीचड मे लिपटा रहना। पिछले दिनो किसी बात के प्रसग मे उसने कहा था, "आदमी इस तरह रह सकता है, यह मेरी धारणा के विपरीत है, पर आज उस विपरीत को अपनी आँखो से देख रहा हूँ।"

बहूरानी ने कहा, "तुमने क्या तय किया है ?"

"मैं सोचता हूँ, इस बस्ती को आदमी के रहने लायक बना दूँ। बनायेंगे वे ही जो भोगेंगे, हम तो मात्र सहयोग देंगे। रहे तो खपरैल ही, दीवाल ईंट की और फर्श पक्की हो जाये और बेड से घिरी थोडी-सी जमीन आगे-पीछे हो, जिससे एक परिवार मामूली जिन्दगी सफाई से जी सके। यानी कुछ छोटे-छोटे काटेज के जैसा। देखने लायक, साँस लेने लायक।"

बहूरानी ने महसूस किया था कि उस क्षण जैसे खपरैल से छाये, बाग-बगीचे से घिरे मनभावन कॉटेज का स्वप्न अभिजीत की आँखो मे साकार हो उठा हो। ऐसा कुछ कहना उन्हें भाया नही जिससे कि उसका यह सपना टूट जाय। लेकिन अभिजीत के लिये यह सिर्फ सपना ही नही है, उसे साकार करने के लिये वह कटिबद्ध भी है। अभिजीत ने आगे जो कुछ कहा उससे स्पष्ट हुआ कि—

"मैं कह रहा था, कुछ असंभव करने की इच्छा नहीं है। जो हर किसी के लिये अनिवार्य है, ऐसा कुछ करना मैं चाहता हूँ और यह पूरी स्कीम इतनी बड़ी है कि हाँ तुम जिसे कहती हो शंभूचरण एंड पार्टी वह छोटी नहीं है उनके लिये जगह ही पूरी नहीं पड़ेगी। यों परती जमीन पड़ी तो है, सवाल है रूपये का? इतने रूपये कहाँ से आयें?"

सवाल के निकट पहुँचकर फिर कुछ देर सिर झुकाये अभिजीत सोचता रहा। इसके बाद सिर उठा कर बोला, "मुझे काशी भेज दिया गया, इस बात पर तुमने एक दिन कहा था, "यह दंड जिनने दिया, वे खुद इससे भयानक दंड भोगते रहे। यह शायद तुम नहीं जानते।' यह नहीं जानते हुए भी कुछ-कुछ इसका आभास मुझे है। एक घटना से लगा था कि वे बहुत परेशान रहे और किसी एक काम के माध्यम से उन्होंने अपनी परेशानी मिटानी चाही थी, यह तुम लोग शायद कोई नहीं जान सके, न भइया न तुम। शायद माँ से भी वह छिपा रहा जब कि माँ की एक सही की जरूरत उन्हें पड़ी थी। सही माँ ने तो बिना कुछ जाने ही कर दिया था। पिताजी ने कहा, उनके लिए यही बहुत था।"

"यह मैं जानती हूँ पर अवसर की ताक में तुम्हें बता नहीं पायी अब तक, सिवा इसके और कोई वजह नहीं है।"

"काशी जाने के लगभग दो वर्षों बाद। रजिस्ट्री से एक पाकेट मेरे नाम आया खोला, देखा, मेरे नाम बैंक का एक पास-बुक है। उसे खोला, देखा उस पर मेरा नाम लिखा है और दूसरे पन्ने पर मोटी रकम का अंक चढ़ा है। साथ ही एक पत्र भी था; पिताजी का लिखा। यही पहला और अन्तिम पत्र था जो एक पुत्र को अपने पिता से मिला—मेरे चिरंजीव। इसके बाद लिखा था इस पास-बुक के बारे में। उन्होंने लिखा कि उनके पिता अपनी पतोहू यानी मेरी माँ को एक मकान वसीयत कर गए थे। माँ की सहमति से वह मकान बेचकर उसकी रकम बैंक में जमा कर दी गयी है मेरे नाम उसमें किसी का कोई हक नहीं है। जब मैं अठारह का हो जाऊँगा तो उसे चाहे जैसे खर्च करूँ।

"मन में आया कि वापस कर दूं। नही चाहिए ये रूपये। इसके बाद पत्र फिर पढा। पास-बुक खोला, उस पर हाथ सहलाया। मुझे लगा, नहीं यह सिर्फ रूपये नहीं, इस छोटी सी पुस्तिका में और भी कुछ है। मानो एक ऐसा स्पर्श, जिसे अग्राह नहीं किया जा सकता और रूपये तो माँ के हैं, उन्हें उनके सुसर ने दिया था। वे माँ को बहुत स्नेह करते थे, वे ही ऐसा कहा करतीं थीं।

"सहेज कर उसे आलमारी में रख दिया। आज भी वैसी ही रखी है। सोचता हूँ कि उसे अब काम में लाऊँ।"

१०

पुराने सर्वेयर शीतल दत्त मिले। ये कभी बंद्योपाध्याय घराने के मासिक वेतन भोगी अमीन थे। जगह जमीन की नाप जोख मे माहिर। छोट-मोटे घरो का प्लान भी बना लेते जब कि ओवरसियर नही हैं और न ही इन्जिनीयरिंग स्कूल का कभी मुंह देखा। सुरजित कहा करते थे कि अपने शीतल इंजिनीयरो को जेब में रखते हैं। उनकी मौत के बाद इस स्टेट मे कुछ रोज रहे। इसके बाद हटा दिये गये। तब से फिर कही स्थायी नौकरी मे नही हैं। ठीके पर काम करते रहे, आज कल उसे भी छोड़ दिया। बूढे हो गये। यादवपुर इलाके मे कुछ सस्ते मे जमीन खरीदी और एक वर्ष पहले एक छोटा-सा मकान भी बना लिया है।

लोगो का कहना है कि बद्योपाध्याय घराने की जब चलती बनती थी, उसी बहती गंगा मे शीतल ने हाथ धोया यानी बहुत कुछ अपना बनाया। यह संभवतः झूठ नही हैं। पुराने जमाने मे जमींदार के दफ्तर मे जो लोग काम करते थे उनमे छोटे-बड़े सबो का वेतन बहुत कम होता। कोई उस पर निर्भर भी नही रहता। एक नायब, पूरे दफ्तर के जो मालिक होते, वे महीने म तनख्वाह पाते कुल बीस-पच्चीस रुपये या इससे भी कम, मगर वे अपने घर मे होली-दीवाली खूब ठाठ से मनाते थे। इनके यहाँ एक ब्याह, अन्नप्राशन और जनेऊ मे जो खर्च होता था वह नायब जी के सारे जीवन की कमाई से भी पूरा नहीं पड सकता था। तनख्वाह दरअसल एक रिवाज थी, नौकरी से लगे रहने की मान्यता। आमदनी ऊपरी होती थी खूब, जिसमें कोई रुकावट नही थी। वह सहज, स्वाभाविक रूप मे ही होती, बहुत बार तो प्रत्यक्ष रूप मे भी। मगर दिखाने के लिए पर्दे की ओट मे। जमीदार इसे नियम मानते थे। *उनके हिस्से मे तो कोई हाथ डाल नही पाता। प्रजा का बोझ ये बढाते रहते।* उनका ही पेट मार कर अपना बनाते रहते। यह ऊपरी कमाई कभी-कभी निचोड कर निकाली जाती थी। स्रोत की मोटी धार जमीदार की ओर बहती और पतली उनके सेवक के पेट-पोखर, या परिवार-गहर मे जा कर गिरती।

शीतल दत्त ने अभिजीत का बचपन मे देखा था। दरवाजे से घुसते या निकलते एक शर्मीला-शान्त ऐसा लडका जैसा साधारणत जमीदारो के होते नहीं। कभी-कभार उस प्यार से निकट बुलाकर यो ही कुछ पूछ ताछ करने पर उसके उत्तर से मन अघा गया था। इसके बाद इतने वर्षों बाद अब मुलाकात हुई। 'आप' कहू या 'तुम', उलझे

रह कर मुंह से 'तुम' ही निकला। आज का हाल चाल लेते हुए पुराने जमाने की बात भी छेड़ बैठे, अफसोस भी जाहिर किया।

अभिजीत इसी बीच अपने काम की बात छेड़ बैठा। उसकी इच्छा थी, इनसे सिर्फ जरीप करवाले। जमीन कितनी है, यह पता चल जाये तो वह अन्दाज लगा सकेगा कि कितने कोटेज बन सकते हैं और एक में कितना खर्च बैठेगा, जिसका हिसाब निहार से बनवा लिया जायेगा। सर्वेयर की रिपोर्ट मिलते ही कुल खर्चे का पता चल जायेगा। उसकी जमा रकम से काम हो जायगा या नहीं, अगर नहीं तो कैसे कहां से काट-छांट की जा सकती है, यह भी विचारा जा सकता है। सो पूछा "आखिर जमीन है कितनी ?"

शीतल बाबू पूछ बैठे; "वहां क्या करने का इरादा है ?"

अभिजीत झुंझला उठा। सर्वेयर का यह पूछना बेकार है, मगर अमीन है तो उसकी यह उत्सुकता हो सकती है, यह मान लिया जा सकता है। खास कर यहां के मामले में। उनसे संपर्क बहुत पुराना जो है। इसलिये....इससे आपको क्या मतलब ? —जैसे प्रश्न करने में हिचक हुई। झुंझलाहट छिपा कर अभिजीत ने अपनी योजना हल्के-फुल्के ढंग से बतायी। शीतल बाबू सब सुनकर दुःखी मन से बोले, "एकदम, पत्थर में दूब उगाने का ख्याल है। ये लोग तुम्हारे इतने बड़े दान को कानी कौड़ी के मोल भी नहीं मानेगें, तुम्हारा नाम भी जबान पर नहीं लायेंगे।"

"जी, दान मैं नहीं कर रहा हूं और न मुझे नाम की ही परवाह है।" अभिजीत यह कहना चाह कर भी कह नहीं सका। इसलिये नहीं कि यह गर्वोक्ति होगी बल्कि भैंस के आगे बीन बजाना होगा। न ये समझेंगे, न इन्हें समझाया ही जा सकता है।

शीतल बाबू श्रोता को चुप पाकर जरा ऊंची आवाज में बोले, "और फिर तुम्हारा ये काटेज बन्दर के गले में घंटी की उक्ति चरितार्थ करेंगे। ये कभी ऐसे न रहे हैं, और न रह सकेंगे ? दुनिया भर का गोबर इकट्ठा करके दीवालों पर गोंइठा पाथेंगे। तुम सामने बगिया बनाओगे, ये वहां कूड़ाखाना बना डालेंगे। चबूतरे पर बैठ कर उनके नंगू-मंगू पेशाब करेंगे, टट्टी करेंगे पांच-पांच, सात-सात बकरियां पालेगें। ऐसों के लिए तुम घर बनाने की सोचते हो। तुम भी गजब के हो। सब सिमट कर एक संग एक ही कमरे में घुसे रहेंगे। एक महीना भी नहीं बीतेगा कि आज जैसे नाक पर कपड़ा रखना पड़ता है उस समय भी रखना पड़ेगा।"

अभिजीत चुप था, लेकिन अन्दर ही अन्दर नाखुश भी। जिसे शीतल बाबू ने भांप भी लिया तो गला दाब कर बोले; "तुम्हारे पास हृदय है, सो हो क्यों नहीं ? कितने बड़े वंश के लड़के हो। तुम्हारे बाप-दादे भी कितना क्या दान-त्याग कर गये हैं। उन लोगों ने मन्दिर की प्रतिष्ठा की, तालाब-पोखर खुदवाये तुम भी ऐसा ही कुछ करो, मतलब स्कूल खुलवाओ। अस्पताल बनवाओ, सभी का कल्याण हो। सिर्फ

उनके पीछे इतना रुपया बहाने से फायदा ? जमींदारी गवर्नमेंट ने ले ली। रुपये तो दिए नहीं अभी। समझ-बूझ कर जो करना है करो मेरा तो और कुछ कहना नहीं है।"

अभिजीत चौंक कर बोला, "नहीं, यह क्या बात हुई ! आप को जो कुछ मिला है वह आपकी मेहनत का ही मिला है। छोड़िये, यह काम आप कब करेंगे।"

शीतल बाबू ठक रह गये। वे अपने पुराने मालिक के नये उत्तराधिकारी का मुँह ताकने लगे। फिर बोले, "करने को तो कल से ही शुरू कर सकता हूँ।"

"तो ठीक है, आपको उसके मद मे कुछ रुपये दे दिये जायें, आज कहे देता हूँ।" इतना कह कर अभिजीत उठ खड़ा हुआ।

एक लम्बे अर्से बाद आज जब सुबह अभिजीत सो कर उठा पर रियाज करने बैठा। इतने दिनों इच्छा होती ही नहीं थी। हो कैसे ! इसके लिये मन मे जो धीरज और शान्ति चाहिए वह हो तब न जिस काम मे लगा मन उसी मे उलझा रहता है। रोज के कामो की बात और है। उसकी एक सीमा होती है, किसी दूसरे काम मे दिक्कत नहीं आती। लेकिन यह काम ही कुछ और है। इसमे उत्कंठा, अनिश्चयता, क्या पता क्या हो, ऐसी एक भावना जुड़ी रहती है। रात को भी जो पीछा नहीं छोड़ती। अधिक रात तक जिस की चिन्ता जाती रहती है। सेवेरे-सवेरे सो कर उठना तो उसकी पुरानी आदत है, अभिजीत के आज-कल वह भी नहीं हो पाता।

तानपुरा रख कर अपने कमरे की चौड़ी खुली छत पर वह कुछ क्षण टहलता रहा। वहाँ से गंगा दिखाई पड़ती है। वहाँ सुर्खी बाल से ढँकी एक गहरी खन्दक है। उसकी तलहटी मे जो एक पतली-सी जल-रेखा किसी तरह बची रह कर 'नदी' के रूप मे बह रही है, उस पर आँखें जाती ही नहीं क्योंकि वह बीच मे अवस्थित है, 'कॉलोनी', एक नरक, जानवरों की जिन्दगी का एक नमूना—'जानवर' क्यो कि वह सजीव है। प्रति मुहूर्त्त वह भद्दी आवाज में अपने होने की घोषणा करता रहता है—'मैं हूँ।' तुम हो मगर इंसान की अभिरुचि को नोचने-खसोटने का अधिकार तुम्हे नहीं है।

अभी कुछ दिनों पहले तक उस ओर देखने की उसकी इच्छा नहीं होती थी। ऊब, टीस और अपराध-वृत्तियों की एक कैसी मिली जुली अनुभूति से वह भीतर ही भीतर व्याकुल हो उठता था आज यह भाव उसे भटका नहीं सका। वहाँ वह आँखें गड़ाये रहा और देखता रहा कि बदरंग मिट्टी के तेल के पीपे से, फटे चिथे बोरे से घिरा तथा टूटे खपरैल से छाया यह स्तूप धीरे-धीरे विलीन होता जा रहा है और उसकी जगह उभर रही है साफ-सुथरी, सजी-सजाई एक बस्ती। 'कॉलोनी' नहीं। इस शब्द को उन लोगो ने क्यो अपनाया यह अभिजीत की समझ मे आज तक नहीं। आया वे तो इसी देश के वासी हैं, 'उपनिवेश' तो विदेशी बनाते हैं। लगता है इन्हे जबरदस्ती विदेशी

बनाया गया। 'कॉलोनी' यानी मन के विरुद्ध कुछ मान लेना। 'कालोनी' मिटा कर इसे उनका अपना घर बनाना होगा। पूर्व पाकिस्तान के न होंगे—बंगाली, इस पार के रहने वालों की तरह ही, उनसे अलग नहीं। सीमा की लकीर खींच कर और उसके ईद-गिर्द खूंटी खम्मा गाड़ कर धरती का हिसाब किया जा सकता है मगर एक देश या एक जाति को दो टुकड़ों में बाँटा नहीं जा सकता।

सुबह का नाश्ता अभिजीत अपने कमरे में ही करता है, सो वह कर चुका। मंगला चाय का प्याला और तश्तरी उठा कर ले गयी। दफ्तर जाने के पहले यों ही एक मासिक के पन्ने अभिजीत उलटने लगा कि तभी कालोनी की ओर शोर सुनाई पड़ा। यह कोई नई बात नहीं थी। लड़ाई हंगामा वहाँ के लिए भजन-कीर्त्तन है। बात-बात में पति-पत्नी को पीटते हुए भद्दी गालियाँ बके, घर से निकल जाने की धमकी दे, औरतें भी चूकती नहीं। हमला सिर्फ गालियों तक ही नहीं, लात-जूते, लाठी-सोंटे, गुत्थम-गुत्थी तक होना रोज का काम है। माँ-बेटी, बाप-बेटे, भाई-बहनों में बतकही होती, उसकी शब्दावली सभ्यता के कोने में ढूंढ़े नहीं मिलेगी। पड़ोसी बड़े मजे में, बिना कानों में उँगलियाँ डाले इसके मजा लेते रहते हैं। आज जो श्रोता होते कब वे ही रण-क्षेत्र के योद्धा नहीं होंगे, ऐसा कोई कह नहीं सकता। अपनों से पराये के बीच, वहाँ से घरों के आँगन में आग लहकती रहती।

अभिजीत शुरू में इससे परेशान हो जाता। हलधर या किशन को बुला कर कहता कि जा देख आ, क्या हो रहा है उधर, लेकिन अब यह सब उसे व्यग्र नहीं करता। रोज के खाते में आ गया है यह सब। मगर आज का मामला कुछ और था। अभी वह यह सब सोच ही रहा था कि जरा पता लगाये कि हलधर दौड़ा हुआ आया। बोला, "छोटे बाबू, शीतल बाबू को धक्के देकर मारपीट कर लोगों ने भगा दिया।"

"क्या, वे कहाँ हैं?"

"आफिस में।"

अभिजीत फौरन वहाँ से दफ्तर में आया। उसके पहुँचते ही शीतल दत्त फट पड़े; "भइया, मैंने कहा था न, ये पनाले के कीड़े पनाले में ही जिन्दा रह सकते हैं। गंगा के निर्मल जल में ऐंठ कर मर जायेंगे। तुम चले ही ऐसों का कल्याण करने!"

वे और कुछ कहने जा रहे थे। अभिजीत ने बीच में ही रोक कर जानना चाहा, "हुआ क्या?"

जवाब में जो कुछ उससे पता चला वह यह कि मार-पीट, दंगा-फसाद जैसा कुछ नहीं हुआ, मगर कालोनी में घुसने नहीं दिया गया। नाप-जोख में रुकावट डाली गयी और शीतल बाबू ने जब मालिक की दुहाई देकर अपने लोगों के साथ घुसने की चेष्टा की तो कई छोकरे आगे बढ़ आये, उनका जंतर-बंतर छीन लिया, उनमें से एक ने

मजाक उड़ाते हुए कहा—'आपके मालिक में अगर दम है तो वे ही क्यों नहीं आगे आते ! आप हैं कौन हैं—न तीन में न तेरह में ! ... .'

अभिजीत अचरज में डूब गया। एक तो, जरीप को रोकने का कारण उसकी समझ में नहीं आया। शंभूचरण से इस विषय में बातें पहले ही हो चुकी थीं। उसने कोई आपत्ति नहीं की थी, दूसरी बात यह कि उनके पक्ष से यह व्यवहार पहली बार हुआ, व्यक्तिगत रूप से इतने दिनों उन्हें उनसे अच्छा व्यवहार ही मिलता रहा। कई मिनट में कुछ सोच कर फिर शीतल बाबू की तरफ देखते हुए कहा, "चलिये, देखें, माजरा क्या है ?"

शीतल बाबू ने कहा, "तुम खुद न जाओ। छोकरों की मति-गति ठीक नहीं प्रतीत हुई। अच्छा होगा कि किसी और को भेज कर मेरा फीता-वीता मँगा दो। मैं अब उधर पैर रखने वाला नहीं।"

अभि रुका नहीं। तन पर बनियाइन और पैरों में चप्पल पहने ही वह निकल पड़ा। दफ्तर में जो-जो लोग थे—हलधर, किशन, दो कमकर—वे भी उन्हीं के साथ चल पड़े।

कॉलोनी के मुहाने पर कोई नहीं मिला। कुछ आगे था उनका पचायत-घर। वहाँ, उसके अन्दर और बाहर बहुत से लोग इकट्ठे थे। कोई भाषण देने की मुद्रा में ऊँची आवाज में कुछ कह रहे थे। अभिजीत को देखते ही बाहर इकट्ठे लोगों ने रास्ता बना दिया। अभि ने चारों तरफ देख कर जानना चाहा कि शंभू कहाँ है ?

एक संग कई बोल उठे "वह वह अन्दर है।"

अन्दर जो लोग थे उनमें से अनेकों की नजर इधर उठी। एक दबी सी हलचल का सन्नाटा सायँ-सायँ करने लगा। भाषण दे रहे थे एक अधेड़ सज्जन उनके अगल-बगल तीन चार नौजवान बैठे थे साफ-सुथरे कपड़ों में, चेहरे से अपरिचित लगे। कॉलोनी के एक लड़के ने उठ कर भाषण देने वाले के कान में कुछ कहा। वे दरवाजे की तरफ बढ़ आये। अभिजीत के सामने खड़े होकर बोले, "आप शायद यहाँ के सरकार हैं ?"

इस सरकार में व्यंग का भाव छिपा था। अभिजीत के उत्तर देने के पहले ही अन्दर से आवाज आयी, "यही हैं अपन अभिजीत बाबू।"

अभि ने देखा यह वही मिस्त्री था, हाल का ताला तोड़ने के लिए हलधर जिसे बुलाकर ले गया था। संगीत-सभा में प्रवेश पाने के लिए जिसने कहा था, हम हूँ सुनेंगे जरा।' अभिजीत ने जिसे सादर अनुमति दी थी।

वक्ता और उसके आस-पास के नौजवानों ने बुरी नजर से अभिजीत को देखा। कॉलोनी के दो-तीन छोकरे आपस में एक दूसरे को धमकाने लगे, 'तुम चुप भी रहो।' कोई फिर कुछ नहीं बोला। अभिजीत वक्ता महोदय को सबोधन कर बोला, "आप को तो कभी देखा नहीं। आप क्या यहीं रहते हैं मतलब इसी कालोनी में ?"

बनाया गया। 'कॉलोनी' यानी मन के विरुद्ध कुछ मान लेना। 'कालोनी' मिटा कर इसे उनका अपना घर बनाना होगा। पूर्व पाकिस्तान के न होंगे—बंगाली, इस पार के रहने वालों की तरह ही, उनसे अलग नहीं। सीमा की लकीर खींच कर और उसके इर्द-गिर्द खूंटी खम्भा गाड़ कर धरती का हिसाब किया जा सकता है मगर एक देश या एक जाति को दो टुकड़ों में बांटा नहीं जा सकता।

सुबह का नाश्ता अभिजीत अपने कमरे में ही करता है, सो वह कर चुका। मंगला चाय का प्याला और तश्तरी उठा कर ले गयी। दफ्तर जाने के पहले यों ही एक मासिक के पन्ने अभिजीत उलटने लगा कि तभी कालोनी की ओर शोर सुनाई पड़ा। यह कोई नई बात नहीं थी। लड़ाई हंगामा वहाँ के लिए भजन-कीर्तन है। बात-बात में पति-पत्नी को पीटते हुए भद्दी गालियाँ बके, घर से निकल जाने की धमकी दे, औरतें भी चूकती नहीं। हमला सिर्फ गालियों तक ही नहीं, लात-जूते, लाठी-सोंटे, गुत्थम-गुत्थी तक होना रोज का काम है। माँ-बेटी, बाप-बेटे, भाई-बहनों में बतकही होती, उसकी शब्दावली सभ्यता के कोने में ढूंढ़े नहीं मिलेगी। पड़ोसी बड़े मजे में, बिना कानों में अँगुलियाँ डाले इसके मजा लेते रहते हैं। आज जो श्रोता होते कब वे ही रण-क्षेत्र के योद्धा नहीं होंगे, ऐसा कोई कह नहीं सकता। अपनों से पराये के बीच, वहाँ से घरों के आँगन में आग लहकती रहती।

अभिजीत शुरू में इससे परेशान हो जाता। हलधर या किशन को बुला कर कहता कि जा देख आ, क्या हो रहा है उधर, लेकिन अब यह सब उसे व्यग्र नहीं करता। रोज के खाते में आ गया है यह सब। मगर आज का मामला कुछ और था। अभी वह यह सब सोच ही रहा था कि जरा पता लगायें कि हलधर दौड़ा हुआ आया। बोला, "छोटे बाबू, शीतल बाबू को धक्के देकर मारपीट कर लोगों ने भगा दिया।"

"क्या, वे कहाँ हैं ?"

"आफिस में।"

अभिजीत फौरन वहाँ से दफ्तर में आया। उसके पहुँचते ही शीतल दत्त फट पड़े; "भइया, मैंने कहा था न, ये पनाले के कीड़े पनाले में ही जिन्दा रह सकते हैं। गंगा के निर्मल जल में पैठ कर मर जायेंगे। तुम चले ही ऐसों का कल्याण करने !"

वे और कुछ कहने जा रहे थे। अभिजीत ने बीच में ही रोक कर जानना चाहा, "हुआ क्या ?"

जवाब में जो कुछ उनसे पता चला वह यह कि मार-पीट, दंगा-फसाद जैसा कुछ नहीं हुआ, मगर कालोनी में घुसने नहीं दिया गया। नाप-जोख में रुकावट डाली गयी और शीतल बाबू ने जब मालिक की दुहाई देकर अपने लोगों के साथ घुसने की चेष्टा की तो कई छोकरे आगे बढ़ आये, उनका जंतर-मंतर छीन लिया, उनमें से एक ने

मजाक उडाते हुए कहा—'आपके मालिक मे अगर दम है तो वे ही क्यो नहीं आगे आते ! आप हैं कौन हैं—न तीन मे न तेरह मे !......'

अभिजीत अचरज मे डूब गया । एक तो, जरीप को रोकने का कारण उसकी समझ मे नही आया । शंभूचरण से इस विषय मे बाते पहले ही हो चुकी थीं । उसने कोई आपत्ति नही की थी, दूसरी बात यह कि उनके पक्ष से यह व्यवहार पहली बार हुआ, व्यक्तिगत रूप से इतने दिनो उन्हे उनसे अच्छा व्यवहार ही मिलता रहा । कई मिनट मे कुछ सोच कर फिर शीतल बाबू की तरफ देखते हुए कहा, "चलिये, देखे, माजरा क्या है ?"

शीतल बाबू ने कहा, "तुम खुद न जाओ । छोकरो की मति-गति ठीक नहीं प्रतीत हुई । अच्छा होगा कि किसी और को भेज कर मेरा फीता-वीता मँगा दो । मैं अब उधर पैर रखने वाला नही ।"

अभि रुका नही । तन पर बनियाइन और पैरों मे चप्पल पहने ही वह निकल पड़ा । दफ्तर मे जो-जो लोग थे—हलधर, किशन, दो कमकर—वे भी उन्ही के साथ चल पड़े ।

कॉलोनी के मुहाने पर कोई नही मिला । कुछ आगे था उनका पचायत-घर । वहाँ, उसके अन्दर और बाहर बहुत से लोग इकट्ठे थे । कोई भाषण देने की मुद्रा मे ऊँची आवाज मे कुछ कह रहे थे । अभिजीत को देखते ही बाहर इकट्ठे लोगो ने रास्ता बना दिया । अभि ने चारों तरफ देख कर जानना चाहा कि शभू कहाँ है ?

एक सग कई बोल उठे "वह ..वह अन्दर है ।"

अन्दर जो लोग थे उनमे से अनेको की नजर इधर उठी । एक दबी सी हलचल का सन्नाटा सायँ-सायँ करने लगा । भाषण दे रहे थे एक अधेड सज्जन उनके अगल-बगल तीन चार नौजवान बैठे थे साफ-सुथरे कपडो मे, चेहरे से अपरिचित लगे । कॉलोनी के एक लडके ने उठ कर भाषण देने वाले के कान मे कुछ कहा । वे दरवाजे की तरफ बढ आये । अभिजीत के सामने खड़े होकर बोले, "आप शायद यहाँ के सरकार है ?"

इस सरकार मे व्यग का भाव छिपा था । अभिजीत के उत्तर देने के पहले ही अन्दर से आवाज आयी, "यही हैं अपने अभिजीत बाबू ।"

अभि ने देखा यह वही मिस्त्री था, हाल का ताला तोडने के लिए हलधर जिसे बुलाकर ले गया था । सगीत-सभा मे प्रवेश पाने के लिए जिसने कहा था, 'हम हूँ सुनेंगे जरा ।' अभिजीत ने जिसे सादर अनुमति दी थी ।

वक्ता और उसके आस-पास के नौजवानो ने बुरी नजर से अभिजीत को देखा । कॉलोनी के दो-तीन छोकरे आपस मे एक दूसरे को धमकाने लगे, 'तुम चुप भी रहो ।' कोई फिर कुछ नही बोला । अभिजीत वक्ता महोदय को सबोधन कर बोला, "आप को तो कभी देखा नही । आप क्या यही रहते हैं, मतलब इसी कालोनी मे ?"

"मैं कहाँ रहता हूँ, यह आप न भी जानें तो कोई फर्क नहीं पड़ता। इसके पहले मैं जानना चाहता हूँ, आप जमीन की नाप-जोख किस लिये करवा रहे हैं? इन्हें यहाँ से हटाने का अगर ख्याल है तो— ।"

उनके वाक्य पूरा करने के पहले ही कोने से शंभूचरण की आवाज आयी, "नहीं, ऐसा कोई ख्याल उनका नहीं है। इनका जो कुछ ख्याल है, वह अपने हक में है।"

"अपने हक में ?" ऐंठ कर भाषणकर्त्ता ने कहा, "आप से कहने को यही कहा गया होगा, मगर मैं कहूँ कि वह सिर्फ आपके हक में होगा। आप उनसे मिल कर कॉलोनी का सत्यानाश करने में लगे हैं। आप मालिक के दलाल हैं।"

स्वर विरोध और समर्थन में टकराने लगे और एक हलचल-सी मच गयी। वह सज्जन गला फाड़ कर बड़बड़ाने लगे। अभिजीत ने हाथ उठाकर उन सभी को शान्त रहने का इशारा किया। और स्वरों की टकराहट के शान्त होते ही जो सज्जन भाषण दे रहे थे उनसे कहा, "देखिये हम आपको नहीं पहचानते। इनकी ओर से आप को बातें करने का क्या हक है, यह मेरी समझ में नहीं आता।"

कॉलोनी के दो-तीन लड़के एक संग बोल उठे, "ये हम लोगों के नेता हैं।"

"होंगे।" अभिजीत ने कहा, "मगर ये यहाँ के बाशिन्दा नहीं हैं।"

"न सही।" बिगड़ कर नेता जी बोले, "अपने इन रिफ्यूजी भाई-बहनों के अधिकारों की रक्षा का भार हमने उठाया है। ऐसी कॉलोनियों में जमींदार के बढ़ते अत्याचार को रोकना ही हमारा काम है। इनके अभाव-अभियोग बहुत हैं, जिन पर विचार करना जरूरी है।"

और फिर धीमी आवाज में बोले, "आप से झगड़ा-झंझट करना हमारा मकसद नहीं है। मिल बैठ कर बात करना हम चाहते हैं।"

अभिजीत कुछ पल चुप रह कर शान्त स्वर में बोला, "मेरा भी ऐसा ही ख्याल है। ये जब हमारी जगह में आकर रहने लगे, और इतने दिनों से रह रहे हैं, तो इनकी जो समस्याएँ हैं, उसे हम और ये मिल कर ही मिटा लें। किसी बाहरी की जरूरत ही नहीं है।"

इतना कह कर दूसरे पक्ष को विरोध करने का मौका न देते हुए अभिजीत अपने घर की ओर लौट पड़ा।

११

कॉलोनी से कुछ दूर हट कर गंगा हठात दाहिने मुड़ गयी है। बायीं तरफ ऊँचा पाट है। दिन-दोपहर में बहुत-सी गायें चरती हैं। चरवाहे लड़के धमा चौकड़ी मचाते

ते है—गुल्ली डंडा और कबड्डी खेलते रहते हैं। सांझ के बाद वहाँ व्याप जाता है मोश सन्नाटा। आस-पास कोई घर-द्वार नही है। किसी को बिना प्रयोजन आने की रत नही पड़ती। वही, एक छोटे से टीले पर शंभूचरण गमगीन बैठा था।

आसमान पर चाँद नही था पर तारे बहुत थे। उनके क्षीण प्रकाश में नीचे की ली-सी धारा धूमिल नजर आ रही थी। शंभू अपने दोनों हाथों को घुटनों से जोड़ उसी पर ठुड्डी टिका कर कुछ सोच रहा था।

शंभूचरण दर्शन नही बघारता न कविता लिखता है, न पढता है। प्राकृतिक य अवलोकन या अध्यात्म चिन्तन में उसकी रुचि नही है। वह सोच रहा था कॉलोनी बातें—'देश' त्याग कर आने के बाद से उसका ध्यान-ज्ञान और उसकी अपनी स्याएँ सब कुछ कॉलोनी ही है। खास कर उस दिन की घटना, पंचायत के आफिस जो घटी। वह दलाल है, यह उसके दिल को मसोस रहा था। समर्थन में कोई दम । था, विरोधियों का स्वर कहीं अधिक तीखा और पुरजोर था। और ये ही पिछले ों 'शंभू भइया' कहते अघाते नही थे।

वह 'दलाल' है! शंभू को हँसी आ गयी। इस हँसी में पीड़ा की झलक थी। ना कहने वाला उसका कौन है? क्या है? तीन भाई है वह, माँ और एक बहन। ी परिवार। पर्याप्त जमीन-जायदात, पोखर-बगीचा, सब कुछ तो था। दोनों बडे भाई -खलिहान का काम देखते थे। शंभू को उन्होने स्कूल मे पढ़ने को बैठाया था। शंभू ई पढना-लिखना सीख कर रजिस्ट्री दफ्तर में दलील लिखने का काम करने लगा था। एक बहाना था, असली मकसद था गांव में कहाँ क्या अभाव है, अगल-बगल उसकी ी जरूरत है—इसके लिये दौड़-धूप करना। किसके ऊपर जमीदार ने बकाया खजाने लिये दावा दायर किया है, या कुड़की का हुकुम किसके नाम लाया गया है। इसकी ाना मर मिलती काफी थी फिर तो जैसे-तैसे दो कौर मुंह में डाल कर बीस मील र की दौड़-धूप में लगना उसका काम था। इसके बाद वकील, मुख्तार-मुहर्रिर पेश- र, गवाह-सबूत, दलील-दस्तावेज की आफत-विपद मिटाने से लेकर, कैसे-क्या हो लिये बुद्धि खटाना। तीन-चार दिनो के बाद अधमरा होकर जब घर लौटता तब घर लोगों की बक-झक—तुम्हे क्या, घर का खाकर गाँव का बोझ लिये फिरते रहो। तुम्हारे कौन हैं जो बिना खाये-पिये वहाँ पड़े रहे, इससे क्या फायदा? दो पैसे की तो कमाई नही इस काम में। शंभू मुस्कराता रहता-कमाई तो धेले की नहीं। घर में दो आयें, यह दूर की बात, उल्टे घर की कमाई के सारे पैसे निकल जाते गाँव की स्वयं काई में। फिर भी यह उसका नशा था। ऐसा कुछ काम फिर आ गया तो शंभूचरण न्दाबाद। भाई उबिया कर कहते—करे जो मर्जी। वे अपने ऐसे बिगड़े भाई को र से पाल रहे थे। माँ इस कोशिश मे लगी रहती कि कैसे उसे बांधा जाये। चूड़ियाँ नकाने वाली की खोज-बीन भी चल रही थी—गुपचुप।

ऐसे में ही तूफान आया। सब तहस-नहस हो गया—धन-मन, आशा—आकांक्षा, एक जाति का संपूर्ण भविष्य।

लात खाते-खाते शंभूचरण आ पहुँचा उस पार से इस पार। यानी पूरब से पश्चिम, पद्मा से गंगा। बच गयी थी अपना कहने वालों में सिर्फ माँ। दोनों भाई लठैतों की लाठी से मारे गये, उनके बाल-बच्चे कहाँ कैसे खो गये। बहुओं का कोई अता-पता नहीं। बहन को छीन कर ले गये उस पाड़ा के छोकरे। शंभू यदि घर में मौजूद होता तो उसकी भी गति भाइयों-की ही होती। उस समय वह कहीं दूर गया हुआ था। जब दूसरे दिन लौटा तो देखा, माँ बैठी छाती कूट रही है।

पास-पड़ोस के गाँव-जवार में जो लोग बच गये थे, वे आये। उसे घेर कर बैठे—एक झुंड में भिन्न-विभिन्न उम्र के औरत-मर्द, बच्चे-कच्चे। उन्हीं की तरह वह भी है निःसहाय, भटका हुआ। कभी मामूली संकटों में जिनका साथ देता रहा है, उन्हें ऐसे भयानक संकट में कहाँ छोड़े और कैसे? सभी को साथ लेकर शंभू निकल पड़ा—जो होना है पहले हमारा होगा फिर तुम लोगों का, और हम क्या कर सकते हैं, इस समय। राह में आते-आते कितने ही और आ जुटे। जिन्हें वह न जानता था, न पहचानता था। जिन्हें कभी देखा तक नहीं, वे भी अपने होने का दम भरते हुए सामने आ खड़े हुए।

संकट आदमी को एक बनाता है। खून के रिश्ते से भी इसका खिचाव अधिक होता है।

इस पार पहुँच कर भी शंभू एक भीड़ में उलझ गया। क्या जरूरत थी? माँ का हाथ थामे कहीं भी सिर छिपाने की जगह वह पा जाता और दो प्राणी के लिये मोटा खाने, मोटा पहनने की व्यवस्था आसानी से कर लेता। किस बूते पर वह एक हुजूम को ठो रहा है? आदत से लाचार जो है।

इसके बाद के कई वर्षों का इतिहास बड़ा निर्मम है—बहुत कठोर। एक तरफ इतने लोगों के खाने-पहनने और सिर छिपाने की चिन्ता—दूसरी तरफ जमीन पर टिके रहने के लिये संघर्ष। खास नायब और उनके पीछे पुलिस का जोर। बहुत बाधा-विघ्नों में भी इतनी बड़ी कॉलोनी बस गयी, इसके पीछे है शंभूचरण सरकार की एकनिष्ठ, अथक प्रयत्न, परिश्रम, धीर-बुद्धि, संगठन की कुशलता।

यह भी पतियाने जोग है कि कॉलोनी के लोग उसके कहे की कहते थे और किये की करते थे। अगर ऐसा नहीं होता तो अकेला वह कैसे क्या कर लेता! मत-मतांतर का सिर नहीं उठा, यह बात नहीं। लेकिन वह अन्त तक झुकता ही—'शंभू की जब यही इच्छा है तो ठीक है', 'शंभू भइया जब कह रहे हैं तो और कहना क्या है।' पूरी कॉलोनी का मन ऐसा ही था।

अभिजीत के आने के पहले तक कॉलोनी का अहम सवाल था, टिके रहने का सवाल। संख्या के अलावे सभी तरफ से वे कमजोर थे, शंभू यह अच्छी तरह जानता

था। उसकी नीति थी, सहयोग की शमू यह अच्छी तरह जानता था। उसकी नीति थी, समझौते की नीति। सख्या के बल पर लडाई मामूली बात थी। यह विवाद न उठा हो, ऐसा नही कहा जा सकता। मगर वह शमू ही था, जो उसे दबाए रहा। उसका निश्चित मत था कि इससे तत्काल कुछ लाभ होने के बावजूद अन्त मे नुक्सान ही होगा। यह तो विरोधी के हाथो हथियार पकडाना है। इसलिये उसकी 'पालिसी' रही बात-चीत, मिल-जुल कर, एक-एक कर, अपनी माँग मनवाते जाना, जिससे हिलता-डुलता खूँटी-खम्मा जम सके, जिस जमीन पर पैर लडखडा रहे हैं, वह जम जायें।

अभिजीत के आने के बाद से पथ कुछ सुगम हुआ। इसका आभास शंमू को मिला था वह जानता था कि इस आदमी की नसो मे जिस तरह जमींदार का खून है, उसी तरह यह हृदयहीन नही है एक हृदय है, जिस पर वश की छाया नही पडी है। यही कालोनी के लिये गनीमत है। शमू दुर्गा मोहन से मिला। इस भूतपूर्व शिष्य के ऊपर उनका प्रभाव प्रबल है यह सहज-सत्य था। उनसे भरोसा पाने के बाद सीधे 'मालिक' से सजोग उसने बैठाया! देखा, एक जगह पर वे एक हैं। उसकी तरह वे भी शरणार्थियो के कल्याण के इच्छुक हैं, कालोनी को आदमी के रहने लायक बनाना चाहते है। दोनों की दृष्टि मे जो फर्क था वह एक के लिये जो मुख्य है, दूसरे के लिये गौण है। लेकिन यह सवाल उठाने पर इसी मे सारा समय बीत जाता, और कोई काम ही आगे नही बढता। इससे अच्छा है वे जिस राह चलें, अपने से उसे मान ले—शमू का विचार यही रहा। इतने दिनो तक जमींदार से उसका विरोध था, अब हो गया सहयोग।

ऐसे ही मौके पर मैनेजर की नियुक्ति हुई। यो यह ऐसी कोई खास बात नही थी। उसका दफ्तर है,तरह-तरह का झझट-झमेला है, तो एक मैनेजर होना ही चाहिए। पर यहाँ जो आई वह एक पुरुष मैनेजर नही, एक 'लडकी' है, यानी यह एक आश्चर्य-जनक ज्वलन्त 'घटना' है।

जब जमींदार और उनके कार्यकर्त्ताओ से ही जो कुछ समझना-समझाना होता था इसका भार शभू के ऊपर था तो वह अकेले ही आता-जाता था। इसे लेकर किसी का सिर नही दुखता था। अब पूरी कॉलोनी आगे आ गयी है। सिर्फ जवानो की मडली ही नही, बुजुर्ग भी रस ले-लेकर बात-बात मे चर्चा करने लगे हैं। अकेले एक छोकरी के सग-साथ बैठकर शमू भी नि सकोच बातें नही कर पाता था। उसी ने प्रस्ताव रखा कि कालोनी के मामले मे एक प्रतिनिधि-मडल की नियुक्ति हो तो कैसा रहे? सभी ने इस बात को जैसे लोक लिया। कई दिनो तक प्रतिनिधियो के चुनाव की बैठक हुई। पहले जो सूची बनी वह इतनी लम्बी थी कि मैनेजर के कमरे की कौन कहे ऊपर का हाल भी छोटा पडता। काट-छाँट करने पर झमेला उठ खडा होता। कौन रहे और किसका नाम काटा जाय, इसे लेकर भयानक बहस चली। सर्व-सम्मति मे

कोई सूची वन तो पायी नहीं, उल्टे भीतर ही भीतर जो पेंच, गुट-परस्ती, कहा-सुनी चल रही थी वह मुखर हो उठी। एक दल का दूसरे दल का मुँह देखना पाप।

उधर आफिस से बार-बार बुलावा आता। अभिजीत तरह-तरह की स्कीमों में उलझा था। ताकि इनमें से किसी एक को अन्तिम रूप दिया जा सके और उसे लेकर इन लोगों से खुल कर बात हों। जो कुछ होगा वह मैनेजर के ही मार्फत। कई दिनों तक प्रतीक्षा करने के बाद शंभू को अकेले ही जाना पड़ा, सिर्फ एक ही दिन नहीं, दो-चार दिनों का अन्तर दे-देकर कई बार। उस समय अभिजीत अपने काटेज-स्कीम में लगा था। शंभू की उसे हर कदम पर जरूरत थी।

कॉलोनी के बड़े-बूढ़े—दोनों तपके को दिलचस्प चर्चा का मौका मिल गया। पहले दबी-दबी, शंभू के परोक्ष में, फिर प्रकट रूप में, फिर तो बिलकुल मुंह पर—'कहाँ दौड़े जा रहे हो शंभू भाई ? शायद वहाँ ? अच्छा है।', 'कैसा कट रहा है सुना है, खूब मजे में जम गये हो। कुछ मिलने मिलाने को है या—' 'मिलने' का अर्थ गंभीर था।

शंभू इस कान से सुनता और उस कान से निकाल देता। इन बातों को कोई खास महत्व नहीं देता। पर धीरे-धीरे वह समझ गया, कहीं कोई ऐसा चक्र चल रहा है जिसे नजर-अन्दाज नहीं किया जा सकता। छोकरों का एक गुट कुछ दिनों उसके प्रतिकूल था। इस कहा-सुनी से उसे प्रश्रय मिल रहा था। कुछ बड़े बुजुर्गों में भी इसका असरपड़ रहा था।

कॉलोनी के नौजवानों में असंतोष बढ़ रहा था, इससे शंभू अनजान नहीं था। इसका प्रमाण भी प्रत्यक्ष नजर आ रहा था। सब कुछ अनायास पता चल रहा था। इससे बचना चाह कर भी वह बच नहीं सकता था। आग लगी है तो आँच उसे सहनी ही पड़ेगी। इसके लिए उसे कोई गम भी नहीं। लेकिन पछतावा जरूर है। ये सभी जब आये तब इनके दो मुट्ठी अन्न के लिए वह कभी पीछे नहीं हटा, दूसरे की जमीन पर अथक परिश्रम, स्टेशन से इस गांव-उस गांव बोझा ढोना, शाक-सब्जी, गली-गली सिर पर लेकर बेचना, सड़कों पर दुकान लगा कर बैठना, शहर में दो-चार घरों में नौकरी करना जो अक्षम और कमजोर थे, उनमें से कुछ भीख मांगने लगे थे। बूढ़ों के लिए यही सब से सहज उपार्जन था। इन सब बातों से वह अवगत है।

उस समय जो बच्चे थे, आज जवान हो चुके हैं। वे ऐसे काम करने में हेही समझते हैं। इनमें से कुछ तो पढ़ने-लिखने भी लगे हैं। चारो तरफ का रंग-ढंग देख कर आंखे खुली हैं, वे दूसरे तरह का धन्धा चाहते हैं। मिहनत से डरते नहीं, मगर खेत मजूर, कुली, फेरीवाला या घरेलू नौकर होना इन्हें पसन्द नहीं। मिल-फैक्टरियों का करखा पोतना मंजूर है। अगर नाम के साथ फीटर, टर्नर, मेकनिक, इलेक्ट्रिशियन या

ऐसी ही कुछ पदवी जुड़ी हो। कुछ ने ऐसा काम घूम-फिर कर जुगाड भी कर लिया, लेकिन बहुत से बेकार भी हैं।

यह परिवर्तन औरतो मे भी आया। लडकी या जवान-जहान अपनी नानी-दादी की तरह घर-घर चौका-बासन नही करेगी, किसी की रसोई नही बनायेंगी। उपले नही पार्थेगी, लडके नही खिलायेंगी। तो करेंगी क्या भई, नर्स बनेंगी, सिलाई-बुनाई, फैक्टरियो मे महिला विभाग मे, दफ्तरो मे, दुकानो मे नौकरी करेंगी। किसी कम्पनी की प्रतिनिधि बन कर घर-घर मे स्नो, पावडर, मजन और अचार-वचार लेकर बेचना भी मजूर है। खटने से मुँह चुराना पाप है, मगर इस खटने मे 'मान सम्मान' होना चाहिए।

कौन मिटाये नौकरी की यह भूख ? कहाँ है काम ? कालोनी के जब उजडने की स्थिति है तब यहाँ के लडके-लडकियों को यह कौन समझाये। वे व्यग्र हो उठे थे। व्यग्रता की कोख से जनम लेती है उच्छृंखलता और उजड्डपन। ये माँ-बाप, चाचा-भाई को मानते नही। कुछ कहा गया कि झिडक दिया। कभी इन नौजवानो पर शभू का प्रभाव था खूब, वह अब घटने लगा है।

शभू का भरोसा अभिजीत है। उसके हृदय है वह इनके लिए बहुत कुछ करने की इच्छा रखता है। लेकिन इसके लिए चाहिए समय, अवसर। रातोरात सभी समस्याओ का समाधान समव कैसे है ! यही अपने लोगो को समझाना-बुझाना मुश्किल हो उठा जमीदार से उसके रफ्त-जफ्त को भी बहुतो ने सदेह की दृष्टि से देखा। कौन जाने भीतर ही भीतर यह शभू क्या गुलगुला पका रहा है !

प्रकृति को रिक्तता असह्य है। कालोनी की जिन्दगी से शभू जैसे हटता जा रहा था, वैसे ही दूसरे लोग खाली जगह मे भरते जा रहे थे। बाहरी तत्व देखने-सुनने मे भिन्न, पहनने-ओढने मे सभ्य, बाबू तपके के लोग। शुरु मे ऐसो को ये लोग अपने आगे फटकने नही देते थे पर वे लोग लगे रहे, आते-जाते रहे। दो-दो चार-चार का गुट बना कर। पाठ पढाने लगे। हमारा कोई स्वार्थ नही है, आप की भलाई के लिए ही हम आते हैं। इतने दिनो तो जमीदार और सरकार का मुँह देखते रहे। क्या किया उन लोगों ने ? अब हमारी बाते सुनिए, हमारी पार्टी का फार्म भरिए, आइये, एक होकर मैदान मे कूद पडे। देखिये हम क्या से क्या कर देते हैं।

भविष्य के सपने आंखो मे सजे। सब से बडी जरूरत है—काम ! काम, काम क्या बडी बात है ! ऊधमी लडको के लिए इतना लासा बहुत था।

छोटे-माटे नेता का भी आगमन होता कभी-कभी। उनके लिये पचायत घर में मीटिंग होती। कहते, 'कौन कहता है आप उपेक्षित हैं, शरणार्थी हैं ? आप देश की सम्पदा है। आप लोगो के कल्याण मे ही देश का कल्याण छिपा है। यह सकल्प लेकर हम आय हैं।

सभी खबरें शंभू को नहीं मिलतीं। कुछ उड़ती खबरें वह पा जाता। ऐसे कल्याणकारियों पर उसे भरोसा नहीं था। आज से भी भयानक दुर्दिन में वह इनसे भी बड़े-बड़े नेताओं का दरवाजा खटखटा चुका है। किसी ने आंखें खोल कर देखा तक नहीं, फटकार दिया; 'हम क्या करें। ओकलैंड हाउस जाइये। आप की पूरी जिम्मेदारी गवर्नमेंट के ऊपर है।' किसी-किसी ने ऐसा भी कहा—"आये क्यों अपना देश छोड़-कर ?"

आज शरणार्थियों के लिये जिनकी छाती फटती है, उनका भी जरूर इसमें कोई स्वार्थ है। छोकरों को भी वह यह समझाने का जतन करता रहा है कि समझ-बूझ कर फूंक-फूंक कर कदम उठाओ। इसका फल उल्टा ही हुआ। उस पर वे ही संदेह करने लगे और अन्त में उसे सुनना पड़ा—वह जमींदार का दलाल है।

पास ही कहीं झुंड के झुंड सियार बोल पड़े। बहुत रात हो गयी है। अब चलना चाहिए। मगर उठने की हिम्मत नहीं हो रही है। उसी कालोनी में लौट कर जाना होगा, जहां वह आज उपेक्षित है। जब कि वहां के लिए, वहां के सभी लोगों के लिए उसने कुछ उठा नहीं रखा।

मां अब तक जगी ही बैठी है, हो सकता है वह घर-बाहर एक कर चुकी हो। वह कह कर नहीं आया था कि देर से लौटेगा, अब ढेर-सारी बकनी सुननी होगी। मां अपना सब खोकर उसे कैसे खो दे!

शंभू ने लौटते हुये सोचा, मां को लेकर कहीं चला जाये। अंडमन या दंडकारण्य फिर एक नयी जिन्दगी शुरु हो, नये लोगों के संग। यही ठीक होगा। जिनका विश्वास उस पर से उठ गया है, जिनकी आंखों में आज—

"कौन है वहां ?"

शंभू चौंका। कुछ लोग सामने से चले आ रहे थे। नजदीक आये तो उसने देखा कालोनी के तीन छोकरे थे। हर एक के हाथ में सोंटा। एक ही स्वर में बोल उठे, "शंभू भइया!" फिर एक ने कहा, "इतनी रात को कहां गये थे, हम लोग ढूंढ़ते रहे, यहां-वहां।"

शंभू का मन पलटा, इन्हें छोड़ कर कहीं जाया जाय भी तो कैसे? उसे यहीं रहना होगा। यहीं!

१२

दुर्गा मोहन जी नही हैं। अपने बड़े लड़के से मिलने रानीगंज गए हैं। इधर स्वास्थ्य ठीक नही चल रहा था। यों कोई खास बीमारी नहीं थी, अन्दर से हिम्मत

गुम हो गयी थी। बेटी से कुछ बताया नही, लेकिन वह समझ गयी थी और वह घबरा गयी थी। दुर्गा मोहन जी ने समझाया-बुझाया कि उन्हे कुछ ऐसा नही हुआ है। अजर-पजर झड रहा है। उम्र की एक अवधि होती है न ? उसे धोखा कैसे दिया जा सकता है।

यह तर्क व्यर्थ हो गया। लडके आए। बडे लडके का घर कलकत्ते मे है, वहाँ वे जाने को तैयार नही हुए। किसी काम के सिलसिले मे जब गये थे तब श्याम बाजार की गली-गली पार करते हुए साँस फूलने लगी थी। 'मँझले' को टाल नही सके। रानीगंज खुली जगह है, दूर पर पहाड, प्राकृतिक छटा, हवा-पानी भी माफिक है।

जाना पडा।

मास्टरजी की अनुपस्थिति अभिजीत को बुरी तरह खल रही थी। कालोनी के मामले मे उसकी योजना मे वह शुरु से हैं। वह स्वयं उनसे खुल कर राय लेता रहा है। उन्होंने उसे उत्साहित किया था। किसी-किसी बात मे मतान्तर होने के बावजूद भी अभिजीत उनकी हर बात मानता रहा है। अपने लिए वह बहुत साफ है—विद्या-बुद्धि भगवान न कुछ दी है, पर व्यावहारिक ज्ञान के मामले मे उसकी दौड कितनी है वह, यह जानता है। और कुछ करने के लिए यह अनिवार्य है। साथ ही मानव चरित्र का ज्ञान और अनुभव भी, इस दृष्टि से उसका ज्ञान और अनुभव बहुत सीमित है। इसके लिए मास्टर साहब पर निर्भर करना उचित था। वे जीवन मे लंबे दिनो तक आदमी को आदमी ही तो बनाते रहे हैं। दुनिया मे बहुत कुछ देखा-सुना व गुना है।

दुर्गा मोहन ने भी जब कि रिटायर्ड होने के बाद निःस्पृह हो चुके थे, फिर अपने इस परम स्नेही हृदयवान छात्र के बुलावे को अस्वीकारा नहीं। इसे पहले जब देखा था तब वह एकदम बच्चा था। बहुत वर्षों बाद जब फिर देखा तब उन्होंने महसूस किया कि दुनियादारी के मामले मे वह आज भी बच्चा ही है। जन्मा जमीदार के घर लेकिन बात-विचार जमीदारो वाला नहीं है और न ही वह इसे पा सका। मन का गठन ही कुछ और है। हृदय है, आदमी को दुःख-दर्द मे देखकर दुःखी होना है। जितना हो सकता है उसे दूर करने की सोचता है, पर उपाय ढूंढते हुए असहाय हो उठता है।

बहुरानी का पत्र पा कर जब वह यहाँ आया, बेमन से ही आया। कुछ दिन बीते कि वह अपने पुराने जीवन मे पहुँच गया। यहाँ की जो बडी समस्या है, यह जबर दखल कॉलोनी, उसके हल के विषय मे वह सोचता ता रहा पर अपने को आगे लाने मे हिचकता रहा। लोगो से जितना जैसा करा लिया जाये। मैनेजर रखने का उद्देश्य भी यही था। इसके बाद दुर्गा मोहन जी ने गौर किया था। इन शरणार्थियो ने उसकी चिन्ता की परिधि मे बहुत जगह घेर लिया है। इनके लिए कुछ करना चाहिए, ऐसी हालत मे इतने सारे लोगो को छोडा भी नही जा सकता—उसके मन मे यह भाव धीरे धीरे जड जमा बैठा, जिसे वह खुद भी समझ नही सका, पर दुर्गा मोहन जी के

गढा भी नही जा सकता। किसी खटके-अटके मे गगा-स्नान के यात्री जैसे किसी धर्मशाले मे जा टिकते हैं, यह भी बहुत कुछ वैसा ही होगा। वर्ना वह भी करके देख लिया जाता। पर ऐसा करना सभव नही भी हो सकता है, इसके पीछे एक बडा कारण है।

अभिजीत ने कारण उस वक्त नही बताया था। लेकिन दुर्गा मोहन जी ने अनुमान लगा लिया था, इसलिए बिना कुछ पूछे बैठे रहे। अभिजीत कुछ क्षण चुप रह कर धीरे-धीरे बोला, "यह मकान मेरे लिये कोई महत्व न रखता हो किन्तु बहूरानी की दृष्टि मे इसका एक अलग ही नक्शा है। पहले मैं यह नही जानता था, बाद में पता लगा कि इस सूने मकान के कमरे, दर-दरवाजे, सहन-सीढी, यहाँ तक कि दर-दिवाल सभी उनसे बातें करती हैं और वे सब से बातें करती हैं। एक दिन की बात है, आप को सुनाता हूँ। शाम को घूम-फिर कर मैं लौटा तो देखा कि एक अन्धेरे कमरे से छाया की तरह वे निकली। मुझे उन्होंने देखा नही और वे एक दूसरे कमरे मे जा घुसी। इस तरह पूरे मकान मे चक्कर काटती रही फिर धीरे-धीरे सीढियो से नीचे उतर गयी।"

दुर्गा मोहन कुछ देर स्तब्ध बैठे रहे। फिर बोले, "मुझे मालूम है। हलधर ने बताया था। कभी-कभी वे इसी तरह चक्कर काटती रहती हैं। इस मकान से वे सारी जिन्दगी चिपकी रही हैं—हार हुई एक्जिस्टेंस की, उनकी नही। वे तो उसी मे जीवित हैं।"

सभी की दृष्टि तो समान नही होती। सभी समस्याओ को सभी अपनी तरह से देखते हैं। एक के लिये जो सही है, दूसरे के लिये गलत, अर्थहीन। लोग जो भी सोचे, अभिजीत अपने विचार से इस निश्चित निर्णय पर पहुँच चुका था कि उसकी कॉलोनी मे रहने वाले लोगों की पहली जरूरत है, सभ्य ढग से रहने के लिए घर। यही कमी सबसे भयानक कमी है। हो सकता है, उसकी इस धारणा के पीछे उसकी खास मानसिकता हो, जिसकी बुनियाद सहज, उन्मुक्त और सभ्रात जीवन यापन रही हो यो वह ऊपरी तपके का आदमी ठहरा। रोटी-कपडे की कमी से कभी वास्ता नही पडा। उसके कमी की यत्रणा वह बुद्धि से, हृदय से अनुभव करता रहा, जीवन मे नही। भूख की उसकी अनुभूति में अनुभव का हाहाकार नही है। कारण जो भी रहा हो, ये भूखे हैं, नगे हैं, इसे महत्व न देकर उसने इनके उठने-बैठने की गैरत मिटाने को ही पहले सोचा।

इस बारे मे बहूरानी से पहली बार जो बात हुई थीं, उन्होंने अपनी तरफ से कुछ नही कहा था और जब उन्हे लगा कि इस दिशा मे उसका मन बहुत आगे बढ चुका है, तो फिर इस पर कुछ सोचने-विचारने का जतन नहीं किया, जरूरत भी नहीं महसूस की। उसे जो अच्छा लगे, करे इस घराने के मालिक-मुख्तार हमेशा ख्यालों मे ही खोये रहे हैं, यह भी तो उन्ही का वशधर है। तो यह भी उसी राह चले। वे तीज त्योहार, जातरा-महफिल मे रुपये पानी की तरह बहाते रहे, यह शरणार्थियो के पीछे

है। जो खुले आकाश में मंडरा

। किसी एक में वह लगा रहे यही खुशी की बात है।
या, अब शायद बँध सके।

अभिजीत ने जब उनसे जानना चाहा—'तुम्हारा ख्याल क्या है ?' बहूरानी ने
क तो है, करो।' बस इतना ही कहा था। हो सकता है उन्होंने मन ही मन सोचा
—यह बस्ती उनकी आँखों से हटे, अच्छा ही है। अभिजीत ने जिसे 'कॉटेज' का नाम
या है, बनेगें उस तरफ। खास महल के दूसरे मंजिल की खुली छत पर खड़े हो कर
गंगा का दर्शन किया जा सकेगा। यहाँ से वहाँ तक टूटे महराये छप्पर और ढेर-सारे
गन्दे लोग दृष्टिपथ छेंक कर खड़े नहीं रहेगें। शरणार्थियों के लड़ाई-झगड़े, गाली-गलौज
से कानों को राहत मिलेगी।

बहूरानी से जो कुछ उसने कहा था, वह सब निहार को बताने की उसकी इच्छा
थी पर आगे चल कर इस बारे में ऐसी कोई उत्सुकता उसमें नहीं रही। ऐसी बातों के
लिये एक अन्तरंग वातावरण होना चाहिए। निहार और उसके बीच यह अन्तरंगता
पैदा नहीं हो सकी थी। दोनों में किसी ने भी इसके लिये चेष्टा नहीं की। सहानुभूति
और सौजन्य में कोई कमी न थी, फिर भी संबंध एक तरह से 'आफिसियल'—सा ही
होकर रह गया। अभि ने यह मान लिया कि वह अपने पद का अनावश्यक फायदा उठा
रहा है। 'मालिक' होने की दिक्कतें बहुत हैं। खास कर जब नौकर लड़की हो और
जवान लड़की।

और उस ओर से भी विनय के अलावा और कुछ न मिलता हो। जो कहा गया
सिर झुका कर मंजूर। कुछ ऐसी बातें, काम के सिलसिले की, जिसे किये बिना नहीं
चलता, इससे अधिक वह कभी बोलती ही नहीं। अभिजीत भी कम नहीं है। मैनेजर
और मालिक का जैसा सम्बन्ध होता है, उससे रत्ती भर भी इधर-उधर नहीं होता।

निहार के लिये उसका यह मालिक शुरू से ही जटिल बना हुआ है। बात-चीत
में, व्यवहार में, यों जितना सरल है उतना ही शालीन, बनावटीपन जरा भी नहीं। फिर
भी कुछ ऐसा उसमें होता है जो अपने बीच की दूरियाँ दोनों को ही महसूस करा देती
है। आये भी कम दिन नहीं हुए, रोज न सही, प्रायः ही भेंट, मुलाकात, बातें होतीं ही।
कभी उसके कमरे में, कभी उनके कमरे में, बिना बुलाये कभी वह खुद चले आते हैं
बैठते हैं वे उसकी छोटी मेज की दूसरी ओर। कभी-कभी कुछ दिखाने या पत्र पर दस्तख
कराने की गरज से उसे उनसे बहुत करीब होकर खड़ा भी होना पड़ता है। मगर
उन्होंने कभी भीतर-भीतर भी अनुभव किया हो इसका आभास ही नहीं मिला। उस
उम्र की एक लड़की के लिये अनुग्रह तो दूर की बात, तनिक उत्सुकता भी उनमें नहीं

ऐसे इंसान से जितना हो सके उतनी दूर अपने को रखने के सिवा निह
लिये चारा ही क्या था ? इसके लिये अगर उसके मन में अहम की पतली सी रेखा
जाये तो इसमें भी अचरज की कोई बात नहीं। किसी पुरुष से इतनी तटस्थता औ

सीनता की आशा भला कोई लड़की कैसे करे ? हृदय-वीणा के तारों में झंकार से न सही आँखों की पुतलियों पर खिंची सूक्ष्म-रेखा के द्वारा आरोप करना क्यों नहीं चाहेगी ?

इस कोशिश में अगर वह सफल न भी हो सकी पर मालिक की सहानुभूति जीत चुकी थी, जिसे कहा जा सकता है एक तरह का स्नेह, वह पा रही थी। विधाता ने अजब ढंग से इनका मन-मिजाज गढ़ा था पर अन्ततः जहाँ ला खड़ा किया वहाँ वह खप नहीं पाए। ये इस जमाने के इंसान नहीं हैं। यहाँ की समस्याओं को समझ ही नहीं पाते। कदम-कदम पर असहाय हो उठते हैं। यह सोच कर निहार जितना हो सकता था उतना अपने मालिक को सँभालती—सहेजती थी। कई बार तो उनका सोचा-विचारा इतना ऊटपटाँग होता, कुछ ऐसा करने को कहते, जिसका कोई मतलब नहीं होता, बल्कि अपना नुकसान होने की संभावना उसमें निहित होती। काज वक्त तो काम करने वाले झुँझला उठते। निहार उन्हें समझाती बूझाती, 'जब उनकी मर्जी यही है तो जितना जो हो सके उतना हम लोगों को करना ही चाहिए।' यह कहते हुए उसे हँसी भी आती—ये बेचारे उसे पहचानते ही नहीं। उनके लाभ-हानि को ही ये बड़ा बना कर देखने के अभ्यासी हैं, उसके भीतर का आदमी कितना बड़ा है, यह ये देख ही नहीं पाते।

अपनी 'कॉटेज-स्कीम' को जब अभिजीत ने उसके हवाले किया तब निहार उसे मन से मंजूर नहीं कर सकी। उसने सर्वेयर शीतल बाबू की तरह खुल कर विरोध नहीं किया। लेकिन इसके लिये इतना आगे बढ़ने में कोई तुक उसे नजर नहीं आया। इससे विस्थापितों की असली समस्याओं का निराकरण कितना हो सकेगा ? शम्भूचरण से बातें कर वह जो समझ सकी थी वह यही कि वे खुद इतना नहीं सोचते। जिस जमीन पर वे दखल जमा कर बैठे हैं, उसका अधिकार मिल जाये, बस वे खुश। जबकि उनकी माँगों का कोई अन्त नहीं हो सकता, मगर सब पूरी भी नहीं हो सकती, इसे भी वे अच्छी तरह समझते हैं। इसके अलावे जबर्दस्ती उपकार करने को लोग साधारणत संदेह की नजर से भी देखते हैं। खास कर ये लोग। मार खा-खा कर, यहाँ से वहाँ, वहाँ से यहाँ बसते-उजड़ते रहने पर उनका स्वभाव संदेही हो गया है। उन्हें जब यह कहा जायेगा कि तुम लोगों के लिये बहुत अच्छा घर बनवाया जा रहा है—तब वे आपस में एक दूसरे का मुँह देखने लगेंगे-आखिर बात क्या है ? दया में पिघल उठे हैं, ये यह तो अनहोनी बात है। कॉटेज बनाने के पहले तो उनकी कुछ झोंपड़ियाँ तोड़नी ही होंगी और इसी समय कुछ गड़बड़ी मचेगी। वे लोग अपने हाथों बनाय-जमाये घरों को कुछ दिनों के लिये भी छोड़ कर हटना नहीं चाहेंगे जब स्कीम में इसकी भी व्यवस्था है। उसका उपयोग कितना काम में आयेगा, यह कहना मुश्किल है।

यह स्कीम शम्भूचरण की सलाह से बनी है, उसने समर्थन एवं सहयोग का वायदा किया था। पर अब तो शम्भू का कालोनी में इतना प्रभाव भी नहीं रहा। वहाँ उसके विरोध में एक गुट तैयार हो गया है। इसकी खबर शायद अभिजीत को न हो पर

निहार यह अच्छी तरह जानती है।

निहार ने स्कीम में हाथ लगाने के पहले मालिक से सलाह-मशविरा करने का निश्चय किया था। सोचा था शीतल बाबू को जिस दिन मिलने का पत्र लिखने का आदेश आया, उसी दिन वह बात छेड़ेगी पर यह संभव नहीं हुआ। हो सकता है इसका कारण उसके मन में दबा अहंकार हो — उन्होंने जब खुद कुछ नहीं कहा, तो मुझे क्या गरज ? या ऐसा भी हो सकता है — यही जब वे चाहते है और इतना आगे काम बढ़ा चुके हैं, तो अब रोकने पर उनके मन को चोट लग सकती है। इसलिए उनकी इच्छा ही पूरी हो, कर्त्तव्य भी यही है।

और उस दिन की वारदात ! निहार आयी तो कर्मचारियों ने उसे बताया, कुछ बढ़ा-चढ़ा कर ही। फिर भी इतना तो समझ में आया ही कि जिनके लिए वे बेचैन हैं, वे स्वयं अवरोध बने हुए हैं। हो सकता है इसके जड़ में बाहरी प्रभाव भी हो, न भी हो, पर आशंका तो इसकी है ही। निहार को आशंका तो थी। उसी समय यदि वह सावधान कर देती तो हो सकता है वे जरा इस पर ठहर कर विचार करते। जिस चोट से उन्हें बचाने की गरज से वह उनके पास नहीं गयी, उससे कहीं गहरी चोट में वे पड़ गये।

किसी के बिना कहे ही निहार यह अनुभव कर रही थी कि श्रीमान बहुत शहता हो गए हैं। ठीक भी है। मगर वे रुक जायेंगे ऐसा नहीं लगता। मन जितना भी कोमल क्यों न हो, एक दृढ़ता भी उसमें है, जिसका आभास मिलता रहता है। तभी तो उस दिन इतने लोगों के विरोध के बावजूद भी डटे रहे। हटे नहीं। उनके नेता को सामने ही तन कर कह आये, 'ये मेरी जमीन में आ बसे हैं। इनकी जो समस्याएँ है उन्हें हम और ये मिल कर मिटा लेगें। बाहर के किसी के बीच में पड़ने की जरूरत नहीं।

यह सब निहार ने अपने कानों नहीं सुना। वहाँ वह उपस्थित नहीं थी, समय तक दफ्तर पहुँची ही नहीं थी। जब आयी तो लोगों से सुना। यहाँ के अला कर्मचारी; प्यादे-कमकर सभी ने बड़े गर्व से उसे सुनाया। कहा, 'इतने दिनों मालिक के मुँह से लोगों ने जमींदार के बोल सुने। रोआब देखा अपनी आँखों। ही तो होना चाहिए।'

यह जमींदार का गर्व था या कुछ और निहार नहीं जानती। इस घ स्टेट के मालिकों का बखान वह सुन चुकी है। अभिजीत की नसों में उनकी का दम्भ न होने पर भी उनकी अभिजात्य का भाव पड़ा रह गया हो। अनजाने का प्रभाव उस दिन प्रकट हुआ हो—'ये मेरी जमीन में आ बसे। इनकी जो हैं उन्हें हम और ये मिल कर मिटा लेंगे। बाहर के किसी की जरूरत नहीं। प्रतिपालन की भावना कही जाए तो भी इसमें निहित है एक 'मैं'।

निहित जो भी हो, अभिजीत का यह रुख निहार को भाया था। उसमे पौरुष का गर्व है, यह भीतर ही भीतर मान कर बिना प्रशंसा किए वह रह नही सकी।

इस घटना के बाद कई दिनो तक मालिक से मुलाकात नही हो सकी। उन्होंने भी उसे नहीं बुलाया। निहार को भी ऐसा कोई काम नहीं पडा, जिसे लेकर वह उनके पास जाती।

उस दिन वह जान-बूझकर ही दफ्तर देर से आई। कुछ मिनट बाद हलधर आया और बोला, "छोटे बाबू जानना चाहते हैं कि आप क्या अभी उनसे मिल सकती है ?"

"वे कहाँ हैं ?"

"अपने आफिस मे।"

"चलो, आती हूँ।"

दरवाजे पर बडा-सा पर्दा झूल रहा था। निहार पर्दे के बाहर आ खडी हुई। जब कि वह आ रही है,यह खबर पहले ही भेज चुकी थी फिर भी भीतर जाने मे उसे कुछ हिचक हुई। इसी क्षण हवा के झोके से पर्दा हटते ही नजर आया, सेक्रेटेरियट टेबुल के पीछे रखी अभिजीत की कुर्सी खाली पडी है। अभी-अभी तो हलधर ने कहा था कि छोटे बाबू कमरे मे हैं, वे इसी बीच चले कहाँ गये ! वह खडी-खडी सोच रही थी, कि वह लौट जाये या रहे कि तभी अन्दर से आवाज आयी, "आ जाइये।"

निहार के अन्दर आते ही कोने की आराम कुर्सी पर से अभिजीत उठ खडा हुआ। अपनी कुर्सी की ओर जाते हुये उसने कहा, "बैठिये।"

आज के पहले इस कमरे मे आरामकुर्सी निहार ने नही देखी थी। इधर कई दिनो से वह यहाँ आयी भी नही थी, इसी बीच यह लाई गयी होगी। हो सकता है, पहले से ही पडी हो। कभी-कभी काम के बीच मे आराम करने की इच्छा किसकी नही होती—चलो जरा टाँगें सीधी कर ले या बदन ढीली कर ले। इसीलिए यह आराम कुर्सी लाई गयी हो। यह तो सहज मे ही सोचा जा सकता है। निहार को इस क्षण लगा कि वर्तमान मानसिकता से इसका भी कोई लगाव है।

कभी भी अभिजीत ने किसी वजह से मैनेजर को बुलवाया है तो काम की बातें शुरू करने से पहले उसका कुशल-क्षेम पूछना नही भूला है। कभी-कभी यह भी जानना चाहा है—उसे कोई दिक्कत तो नही है या कैसा महसूस कर रही है ..। पर आज यह सब कुछ नही, आते ही पूछा, "उस दिन जो कुछ हुआ उसके विषय मे कुछ आपने सुना या नही ?"

कब क्या हुआ, क्या नही इसका बिना जिक्र किए इस ऊटपटाँग प्रश्न का उत्तर भी निहार ने दिया, "सुना।" यह तो वह जानती थी कि इधर कई दिनो मे जो कुछ हुआ है वही उसे चैन लेने नही दे रहा हैं।

निहार सामने की कुर्सी पर बैठी थी । अभिजीत मेज पर जरा झुक कर उसकी ओर देखते हुए बोला, "अच्छा आप बता सकती हैं ये हैं कौन ?"

निहार ने गर्दन हिला कर कहा, "नहीं, मैं किसी को नहीं जानती, मगर इतना पता है कि ये किसी राजनैतिक दल के लोग हैं ।"

"यह तो मैं भी समझता हूँ, जब कि यहाँ की राजनीति से मैं बिल्कुल अनभिज्ञ हूँ । लेकिन इतने दिनों तक ये कभी नजर नहीं आये ।"

"जरूरत नहीं थी, नहीं आये ।"

"यह भी कोई बात हुई ! इनकी तो बहुत जरूरत होती है ।"

"सब से उन्हें क्या लेना-देना, उन्हें तो अपनी जरूरतों से मतलब होता है ।"

अभिजीत के आगे निहार की यह बात स्पष्ट न हुई, इसका पता अभिजीत की आंखों से चला । इसलिए उसने अपने कथन को और अधिक स्पष्ट किया, "दिन तो बहुत हो गये, अब इनका नाम वोटर लिस्ट में लिखवाने का अवसर जो आ गया । चुनाव भी सामने ही है । इतने वोट अगर मुट्ठी में हो जायें तो फिर क्या !"

"तो यह बात है ? ठीक है, लोग जिसे चाहें वोट दें । हमें कुछ आपत्ति नहीं मगर वे मेरे कामों में रुकावट क्यों डाल रहे हैं ? इन असहाय लोगों को मेरे विरुद्ध क्यों खड़ा होने की भूमिका रच रहे हैं ।"

निहार ने फौरन कोई उत्तर नहीं दिया । वह समझ गयी कि ये यहाँ की ही राजनीति नहीं राजनीति ही नहीं समझते । ये यह भी नहीं जानते कि राजनीति का धर्म है असंतोष पैदा करना, लोगों को आतंकित तथा विक्षुब्ध बना कर अपना मतल साधना । अंग्रेजी में जिसे कहा जाता है Fishing in troubled water, यही क्षमता दखल करने और विस्तार नीति को फैलाने का सरल तरीका ।

वह सब अगर वह कहती तो अभि को लगता कि वह भाषण दे रही है । लिए वह चुप रही और अभि उत्तर में कुछ सुनने के लिए उसका मुंह देखता रहा तो कहना ही पड़ेगा । कहना न पड़े इसके लिए,वह साफ बोली, "मैं कुछ न सकती । पर लगता है वोट पाने के लिए जो कुछ करना होता है, वे वही कर रहे सीधे-साधे लोगों को समझा रहे हैं कि जमींदार तो तुम लोगों के लिए कभी कुछ नहीं, जो करता है अपने स्वार्थ के वशीभूत होकर । हमलोग तुम्हारे कल्याण आए हैं । इस जमीन पर तुम लोगों को दखल दिला कर रहेंगे । जो बेका धंधे में लगायेंगे, आदमी की तरह जीने के सभी उपाय करना हमारा आदमी जब विपत्ति में पड़ा होता है तब ऐसे आश्वासन पर सहज में ही लेता है । यह मान बैठता है कि — 'हाँ यही अपने हैं ।'

अभिजीत गंभीरता से सुन रहा था । निहार के रुकते ही धीरे-धीरे ठीक कहती हैं । किसी को यह सिद्ध करना हो कि वह तुम्हारा मित्र है

उसे यह समझाना होगा कि और जो है सब आपके दुश्मन हैं। और फिर 'जमींदार' संज्ञा के साथ एक ऐसी परम्परा जुड़ी है कि वह 'दुश्मन' के सिवा और कुछ हो ही नहीं सकता। खैर, आप के ये राजनीतिक नेता कालोनी मे आयें, जायें, मगर अब तो वे मुझ तक पहुँचने लगे हैं।"

"आप के पास ?" निहार आश्चर्यचकित होकर बोली।

"उस रोज के सज्जन मेरे पास आए थे, अधिक रात को। बैठते ही शुरु किया-'उन्हे क्या आप बच्चा समझते है। क्या वे अपनी भलाई-बुराई नही समझते ? आपकी यह घर बनवाने की स्कीम सिर्फ धोखा है, इस कायदे से आप लोगो को हटाने के मतलब मे हैं, यह वे समझ चुके हैं। उनका ख्याल है जोर-जुल्म से जब आप उनका कुछ बिगाड नही सके तब यह तरीका अपनाया है आपने। अपनी ऐसी स्कीमो से बाज आइये।"

"मैंने कहा, 'अगर नही आया तो ?' उनमे जो कम उम्र के थे वे गरज उठे—'तो आपकी अट्टालिका पर भी उनका दखल करा कर दम लेंगे।'

"मैंने हँस कर कहा, 'बस यही न ? इसके लिए आप लोग झूठ-मूठ तकलीफ क्यों उठाये ? अगर ऐसा लगेगा तो मैं खुद उन्हे बुला कर अट्टालिका मे बसा दूंगा।"

निहार को मजा आया, वह तपाक से बोली, "तब उन लोगो ने क्या कहा ?"

"एकाएक गुम हो गये। फिर जो कुछ कहा वह सुन कर मैं चकराया। स्वर एक दम नरम हो गया। उनमे से वे जो कुछ उम्रदराज थे और बात-चीत मे कम हिस्सा ले रहे थे, अब बिगडी बनाते हुए बोले, 'नही, यह सब आपको कुछ करना न होगा अभिजीत बाबू। अपने पूर्वजो के इतने बडे-बडे मकानात आप इन अभागो को सौंप दे यह क्या बात हुई ! एक बार घुस गए तो आप क्या समझते हैं फिर कभी निकलेंगे ? कभी नहीं। ऊपर से दो दिनों मे जो हाल कर देंगे कि आप सोच भी नहीं पाते। कुछ दिन ठहरिए न। इस जमीन से भी वे हटाये जायँ, इसकी व्यवस्था तो हम खुद कर देंगे। और अगर, मान लीजिए, ये न भी हटे तो कम से कम आप की जमीन का मुआवजा सरकार से हम पाई-पाई दिलवा देंगे। आप सिर्फ अपनी यह स्कीम रद्द कर दीजिए।" और वे रुके और अपने साथी की ओर देख कर बोले, "क्या नाम है उसका ?

"उत्तर मिला—शम्भूचरण।"

"वे फिर मेरी ओर मुखातिब हुए, 'हाँ, सुन लीजिए, इस शम्भूचरण को जरा भी तरजीह मत दीजियेगा। आपने उसे पहचाना नही है। इन शरणार्थियो को आप जितना सीधा समझते हैं, दरअसल वे ऐसे नही है। खासकर यह शम्भू। भले आदमियों का मुखौटा लगाए फिरता है, पर अन्दर ही अन्दर बडा भारी बदमाश है। उसका विश्वास करना साँप को दूध पिलाना है।"

निहार मुस्कराई; "शम्भू बाबू की वजह से ही उनकी दाल जो गल नही पाती।"